www.thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 01 दिसम्बर 2013 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 01 दिसम्बर 2013 से 07 दिसम्बर 2013

मार्गशीर्ष कृ.–13 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 84, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. श्रेष्ठ विहार दिल्ली में महात्मा आनंद स्वामी सभागार का हुआ लोकार्पण

श्रेष्ठ विहार स्थित डी.ए.वी. स्कूल में 9 नवम्बर, 2013 को स्कूल के नव विकसित 'महात्मा आंनद स्वामी सभागार' के लोकार्पण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। का लोकार्पण डी.ए.वी कॉलेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान श्री पूनम सूरी जी के कर कमलों द्वारा किया गया। इस अवसर पर सी.एम.सी., एल.एम.सी. तथा पी.टी.ए. के गणमान्य सदस्य उपस्थित थे। इनमें प्रमुख थे– श्री टी. आर.गुप्ता (अध्यक्ष स्थानीय समिति), श्री एन.के. मुद्गल (उपाध्यक्ष), श्री एस.सी गुप्ता (प्रबन्धक), श्री रामबीर बंसल एवं श्री एम.एल. सेखरी आदि।

कार्यक्रम का शुभारंभ ज्ञान एवं आस्था के प्रतीक दीप प्रज्ज्वलन से किया गया। तत्पश्चात् विद्यार्थियों ने रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत किया। कथत्क नृत्य, स्कूल के बैंड 'ध्वनि' की भाव विभोर झंकार, वैदिक मंत्रों के मधुर गायन के साथ आकर्षक नृत्य तथा महात्मा आनंद स्वामी के जीवन की झलकियों को प्रस्तुत करती एक लघु नाटिका का मंचन भी किया गया। सभी ने कार्यक्रम की मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में स्थानीय समीति के अध्यक्ष प्रिंसिपल श्री टी.आर. गुप्ता ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि श्री पूनम सूरी द्वारा डी.ए.वी. आंदोलन की कमान सम्भालने के बाद इसमें कई नए आयाम जुड़े हैं। शिक्षा के माध्यम से पर्यावरण की सुरक्षा एवं संरक्षण का संदेश विभिन्न स्तरों पर दिया जा रहा है। नए प्रयोगों के प्रति समान बढ़ा है।

स्कूल की प्रिंसिपल श्रीमती प्रेम लता गर्ग ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि स्कूल ने शिक्षण एवं शिक्षणेत्तर गतिविधियों के क्षेत्र में नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। उन्होंने कहा कि यह सभागार महात्मा आनंद स्वामी की समृति को समर्पित है। जिन्होंने अपने विचारों और जिवन शैली से संसार के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

''डी.ए.वी. संस्थान शिक्षा की ग्लोबल चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हैं क्योंकि उनका दृष्टिकोण परिवेश की वास्तविकताओं से विकसित होता है। हम अध्ययन–अध्यापन के अपने औजारों पर नई धार लगाने के लिए नियमित रूप से प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। शिक्षण–प्रशिक्षण की नई तकनीकों को अपनाने के लिए हम शिक्षक–शिक्षिकाओं को निरंतर प्रेरित करते हैं। इन सबके साथ–साथ हम अपने विद्यार्थियों में देश और समाज के प्रति लगाव की भावना का विकास करते हैं।'' ये विचार डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान श्री पूनम सूरी ने कार्यक्रम के दौरान व्यक्त किए।

श्री सूरी ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट किया कि डी.ए.वी. शिक्षा संस्थानों की सफलता का रहस्य उनके कुशल एवं प्रभावशाली प्रबंधन में निहित है।

उन्होंने डी.ए.वी की विकास यात्रा की एक बानगी प्रस्तुत की। डी.ए.वी के निर्माण का उद्देश्य तत्कालीन को समाज को ऐसी शिक्षा उपलब्ध कराना था जो व्यक्ति के संस्कारों का परिष्कार करे, दयानंद के सिद्धांतों और वेदों के महत्व को जिवत रखे। महात्मा हंसराज, महात्मा आनंद स्वामी, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जैसे कर्मठ एवं दृढ़ निश्चयी व्यक्तियों ने इस संस्था के विचारों को लोगों तक पहुँचाने के लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। इन महान व्यक्तियों द्वारा चलाए गए आंदोलनों में अनेक बुद्धिजीवी जुड़ते चले गए। पिछले 127 वर्षों में इन सभी के सतत प्रयास एवं समर्पण का परिणाम अब दिखने लगे हैं। आज डी.ए.वी. देश भर में 700 से अधिक शिक्षा संस्थानों का संचालन कर रहा है। इनमें स्कूल, कॉलेज एवं विश्वविद्यालय शामिल है।

इस कार्यक्रम में डी.ए.वी. आंदोलन के पदाधिकारियों, अधिकारियों एवं दिल्ली तथा एन.सी.आर. के डी.ए.वी. स्कूलों के प्रिंसिपलों तथा शिक्षकों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। कार्यक्रम के अंत में स्कूल के प्रबंधक श्री एस. सी. गुप्ता ने सभी मेहमानों के प्रति आभार किया।

डी.ए.वी. बराड़ा में मनाया गया ऋषि निर्वाण दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल बराड़ा में बड़े उत्साह से ऋषि निर्वाण दिवस मनाया गया, जिसमे मुख्य वक्ता आचार्य देवव्रत जी, प्राचार्य, गुरुकुल कुरुक्षेत्र थे। ऋषि निर्वाण दिवस डी.ए.वी. क्षेत्रीय निदेशालय, अम्बाला के तत्वावधान में मनाया गया। रीजनल डायरैक्टर डॉ. यज्ञ दत्त. जिज्ञासु जी ने आए हुए अतिथियों का स्वागत किया। इस कार्यक्रम में डॉ. वेद प्रकाश वेदालंकार, अम्बाला ने भी ''महर्षि दयानन्द सरस्वती की समाज को देन व योगदान'' के बारे में प्रवचन दिया। मुख्य वक्ता आचार्य देवव्रत जी ने महर्षि दयानन्द जी के जीवन वृतांत पर विस्तार से चर्चा करते हुए समाज में फैले अनाचार व पाखण्ड पर कुठाराघात किया व इनका निराकरण सिर्फ वेदों के प्रचार व प्रसार द्वारा ही बताया। डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, बराड़ा के बच्चों द्वारा प्रस्तुत 'ओ३म् महिमा' व 'महर्षि स्तुति' सराहनीय रही। इस अवसर पर अम्बाला की विभिन्न डी.ए.वी. संस्थाओं प्रिंसीपल डॉ. विकास कोहली, श्रीमती मीनाक्षी डोगरा, प्रिंसीपल डॉ. आर.आर. सूरी, श्रीमती रेखा वर्मा व श्रीमती नीलम मलिक उपस्थित थे। लगभग 1000 बच्चों ने बड़े अनुशासित ढंग से विद्वानों के उद्गारों व विचारों को सुना। अंत में प्रिंसीपल सुनीता कपूर ने आए हुए मेहमानों का धन्यवाद किया। शांतिपाठ व जयघोष के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 01 दिसम्बर, 2013 से 07 दिसम्बर, 2013

जय हो उसकी

● **डॉ. रामनाथ वेदालंकार**

महाँ इन्द्रः परश्च नु, महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः ।। ऋग् 1.8.5

ऋषिः **मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः**। देवता **इन्द्रः**। छन्दः **गायत्री।**

● **(इन्द्रः)** ऐश्वर्यशाली परमेश्वर **(महान्)** महान् [है], **(च)** और **(नु)** निश्चय ही **(परः)** सर्वोत्कृष्ट [है] **(वज्रिणे)** [उस] वज्रधारी का **(महित्वं)** महत्त्व, जयजयकार **(अस्तु)** हो। [उसका] **(शवः)** बल **(प्रथिना)** विस्तार और यश से **(द्यौः न)** द्युलोक के समान [है]।

● भाइयो! क्या तुम विश्व–सम्राट् इन्द्र का परिचय जानना चाहते हो? सुनो, वेद उसका परिचय दे रहा है। इन्द्र महान् है, महामहिम है, इस जगतीतल के बड़े से बड़े महिमाशालियों से भी अधिक महिमाशाली है। उसकी महिमा के सम्मुख सूर्य, चाँद, सितारे, नदी, पर्वत, सागर, चक्षु, श्रोत्र, वाक् मन सब तुच्छ है। वह 'पर' है, परम है, सर्वोत्कृष्ट है, इसलिए परामात्मा, परात्मा, परमेश्वर, परमदेव, परात्पर आदि नामों से स्मरण किया जाता है। सर्वोत्कृष्ट होने के कारण ही वह संसार में सबसे अधिक स्पृहणीय है, क्योंकि जो वस्तु जितनी अधिक उत्कृष्ट है, उसे हम उतना ही अधिक पाना चाहते हैं। निकृष्ट या घटिया वस्तु हमारे मन को नहीं भाती। इन्द्र–प्रभु परमोत्कृष्ट होने के कारण हमारा मन–भावन होने योग्य है, हमारी अभीप्सा का पात्र होने योग्य है।

उसके बल, विस्तार और यश का हम क्या बखान करें! कोई सांसारिक वस्तु उसका उपमान नहीं बन सकती, क्योंकि उपमान उपमेय से उत्कृष्ट हुआ करता है, जबकि संसार की कोई वस्तु किसी गुण में उससे उत्कृष्ट नहीं है। फिर भी परस्पर समझने और समझाने के लिए हम कह सकते हैं कि इन्द्र के बल का विस्तार और यश, द्युलोक के समान है। ज्यों ही हम द्युलोक के बल पर दृष्टि डालते हैं, हमारी आँखें चौंधिया जाती हैं। देखो, द्युलोक के सूर्य को देखो! सूर्य का बल इतना व्यापक है कि उसने ग्रहोपग्रहों सहित हमारे सारे सौर–मंडल को अपनी आर्कषणशक्ति रूप डोर से बाँध रखा है। उसने अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित कर रखा है, अन्यथा हमारी भूमि और अन्य ग्रहोपग्रह सब चिर अन्धकार में विलिन हो जाएँ। सूर्य तो द्युलोक का एक सदस्यमात्र है। द्युलोक में अन्य अनेक नक्षत्र–पुंज भी है, जिनके बल, विस्तार और यश के आगे तो हमारी बुद्धि चकरा जाती है। वे सब अपने–आपमें एक–एक सूर्य हैं और वैज्ञानिकों का कथन है कि उनके भी अपने–अपने ग्रहोपग्रह हैं, जिनका वे संचालन और व्यवस्थापन करते हैं। तो, उस द्युलोक के समान विस्तीर्ण एवं यशस्वी इन्द्र का बल है।

वह इन्द्र वज्रधर भी है, पापात्माओं को उनके कर्मों के अनुरूप दण्ड देनेवाला है। यदि हम उसकी दण्ड–शक्ति का मन में ध्यान कर लें, तो जीवन में होनेवाली सब उच्छृङ्खलताओं और अविवेकमय आचरणों से उद्धार पालें। आओ, महिमागान करें जगत् के उस परम यशस्वी सम्राट् इन्द्र का। आओ, जय–जयकार करें उस वज्रधारी का।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्व-ज्ञान

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

शरीर के तीन उपस्तम्भों– आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य का प्रकरण तो इसलिये आया कि प्राण तथा मन को निरुद्ध करने के दोनों साधन–प्राणायाम और ध्यान तभी सिद्ध हो सकते हैं जब शरीर स्वस्थ हो जिसके लिए आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य तीन ही साधन हैं।

अब प्राणायाम की बात पुनः शुरु हुई और प्राणायाम को "तप" बताकर सांख्य सूत्र के आधार पर कहा कि इससे मलों की शुद्धि होकर ज्ञान का प्रकाश होता है। प्राणायाम हानिप्रद नहीं हो सकता यदि विधिपूर्वक गुरु शिक्षानुसार किया जाय।

प्राणायाम के भेद बता कर इस क्रिया को करने की विधि बताई। जहाँ प्राण का निरोध होगा, वहाँ मन भी एकाग्र होने लगेगा। प्राण को रोकते–रोकते जब अवधि बढ़ जाती है तो मन लय होने लगता है। इस सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द का अनुभव भी बताया।

प्राणायाम से अधिक लाभ लेने हेतु 'ओ३म्' तथा गायत्री मंत्र का जप करना चाहिए। मन के लय का सबसे बड़ा उपाय ध्यान है।

ध्यान कैसे किया जाय और मन को निर्विषय कैसे करें इसकी चर्चा चल रही है.......

अब आगे.....

मन के खेल से सावधान

जब साधक ध्यान में बैठता है तो मन अपना और ही व्यापार आरम्भ कर देता है। साधक आज्ञा–चक्र में ओ३म् पर ध्यान जमाना चाहता है और मन रसोईघर में पहुँच जाता है अथवा किसी और स्थान पर चल देता है। एक साधक ने बतलाया कि ध्यान में बैठते–बैठते मैंने अनेक संकल्पों–विकल्पों से तो छुटकारा पा लिया है परन्तु अब एक पदार्थ पीछे पड़ा हुआ है। मैंने पूछा, क्या है वह? साधक कहने लगा कि 'ध्यान में जब बैठता हूँ तो मन सिद्धि प्राप्त करने में लग जाता है– मैं बैठा हूँ, संसार के नाना दुःखों से पीड़ित लोग मेरे पास आ रहे हैं। एक पेट –पीड़ा से तड़पता हुआ युवक आया। मैंने उसके पेट पर हाथ रखा और पीड़ा शान्त हो गई। दस –पन्द्रह अन्धे आए, मैंने उनकी आँखों पर अपने हाथ से जल–सिंचन किया और उनको दृष्टि मिल गई। एक माता का एकमात्र बालक मर गया था, वह रुदन कर रही थी। मैंने उसके बालक को पुनर्जीवित कर दिया, इत्यादि कितने ही ऐसे दृश्य सामने आ जाते हैं–'दूसरों के दुःखों और पीड़ाओं को दूर करने की भावना अच्छी ही है, परन्तु यह भी तो सब भौतिक पदार्थों ही का चिन्तन है। ऐसी सिद्धियों की भावनाएँ भी मन को निर्विषय नहीं होने देतीं। ऐसे सारे संकल्पों से पल्ला छुड़ाना होगा, तभी मन निर्विषय होगा।

जो साधक नाना प्रकार के चित्रों द्वारा मन को एकाग्र करने का यत्न करते हैं, वे बतलाते हैं कि ध्यान में उनके सामने अपने ही कल्पना किए चित्र आते हैं। कभी गंगा प्रवाहित हो रही है, कभी पर्वत खड़े दृष्टिगोचर होने लगते हैं, कभी देवी –देवताओं के चित्र और कभी अपना ही चित्र, कभी किसी प्यारे मित्र या सम्बन्धी का चित्र दिखाई देने लगता है तो तभी गुरु जी का। यह तो सारी मन की कल्पनामात्र है, मन की एकाग्रता नहीं। मन की एकाग्रता तो कभी होगी जब इसे निर्विषय कर दिया जाएगा। हाँ , यह इतनी एकाग्रता तो है कि एक के अतिरिक्त मन और कहीं भटकता नहीं, परन्तु यह एकाग्रता अभी अधूरी है।

ध्यान की विधि–प्राणायाम–सहित

ध्यान किस प्रकार किया जाय कि पूर्ण सफलता मिल जाए? इस सम्बन्ध में प्रभु भक्त उद्धव जी और भगवान् कृष्ण जी का संवाद अच्छा पथ–प्रदर्शन करता है। भक्त उद्धव ने जब पूछा कि ध्यान किस प्रकार और कैसे करना चाहिए? तब भगवान् कृष्ण ने बताया कि

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम्।
हस्तावत्संग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः।।
प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरककुम्भकरेचकैः।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः।।
हृद्यविच्छन्नमोंकारं घण्टानादं बिसोर्णवत्।
प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत् स्वरम्।।

'सुखपूर्वक आसन में (किसी भी प्रकार के आसन में) दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखके सीधा बैठकर, दृष्टि को नासिका के अग्रभाग में स्थिर करके, पहले बार–बार

रेचक–पूरक करके नाड़ी शुद्ध कर लेनी चाहिए अथवा प्रणव (ओम्) के जप के साथ रेचक,पूरक और कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए। प्राण के रोध से जब मन शान्त हो जाए तब हृदय–कमल में निहित ओंकार का ध्यान करके अनाहत ध्वनि, ओंकार एवं घण्टादि नादों का श्रवण करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन ओम् जप के साथ रेचक, पूरक, कुम्भक, इन तीन प्रकार से प्राणायाम का अच्छी तरह अभ्यास करते रहने से प्राण का निरोध होने लगता है और मन शान्त होने लगता है।'

ध्यान करते समय चाहे नासिका के अग्रभाग में चाहे भृकुटि में या ललाट–चक्र वा ब्रह्मरन्ध्र अथवा हृदय–प्रदेश में वृत्ति को ले–जाएँ। इसमें बहुत अन्तर नहीं पड़ता। हाँ, यह अवश्य होना चाहिए कि जहाँ एक बार ध्यान लगाएँ। इसे इधर–उधर जाने न दें अन्यथा यह मन ध्यान में भी अपनी चाल चल जाता है। कभी एक स्थान में , फिर झट दूसरे स्थान पर ले जाता है। साधक समझता है, ध्यान लगा हुआ है परन्तु मन भ्रम में डाले रखता है। अतएव पूरी दृढ़ता से एक ही स्थान को केन्द्र बना लीजिए और वहीं मन को मजबूत बाँध दीजिए।

बिना ज्ञान ध्यान नहीं

यह तो हुई ध्यान की स्थूल–विधि। अब कुछ आगे बढिए और ज्ञान द्वारा ध्यान में प्रवेश कीजिए।

'ऋग्वेदादिभाष्य–भूमिका' में महर्षि दयानन्द ने ध्यान की विधि यह लिखी है: ''धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार, प्रेम और भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है। उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना, इसी का नाम ध्यान है।''

''नास्ति ध्यानं विना ज्ञानम्।''

'ज्ञान के बिना ध्यान नहीं हो सकता।' ज्ञान ही संसार–सागर से तारनेवाला है। ज्ञान और योगाभ्यास, जब इन दोनों का आश्रय ले लिया जाता है तब मन प्रसन्न रहने लगता है और प्रसन्नता मन को एकाग्रता में बाँधने लगती है। मन तो संसारी चिन्ताओं में ग्रस्त हो और उसको ध्यान में लगाना चाहें तो चिन्तित मन जब ध्यान में लगेगा तब वहाँ यह चिन्ताओं के ढेर जमा कर देगा और साधक और भी अशान्त हो उठेगा। अतएव पहले ज्ञान द्वारा इस सारे संसार–चक्र को बुद्धि में बिठा लीजिए और ज्ञान से यह भी जान लीजिए कि यह जो त्रिगुणात्मक प्रकृति से बना संसार है, इसी प्रकृति से बना यह मन भी है। मन तब इन तीन गुणों के द्वारा क्या–क्या खेल खेलता है इसका भी ज्ञान प्राप्त कर लीजिए; और इन्हीं तीन गुणों की कृपा से यह जो चिन्ताओं, दुःखों और संकल्पों की सृष्टि साधक रचता रहता है इसका सार क्या है? जब यह ज्ञान प्राप्त कर लिया जाएगा , तब साधक निश्चिन्त होकर ध्यान में संलग्न हो सकेगा। ज्ञान के कुछ रहस्यों का वर्णन यहाँ अत्यावश्यक है, अतएव इन्हें प्रकट किया जाता है:

(1) शरीर अथवा मन में जो गुण प्रधान है उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। यदि सत्त्वगुण प्रधान है तो ध्यान–अवस्था शीघ्र प्राप्त होने लगती है; रजोगुण प्रधान हो तो पर्याप्त बल लगाना होता है, तमोगुण यदि प्रधान हो तो निद्रा आ घेरती है। यत्न यही होना चाहिए कि ध्यान में बैठने से पूर्व शरीर तथा मन सत्त्व गुण से पूर्ण हो जाएँ।

सृष्टि–रचना से लय

(2) सृष्टि –रचना की अद्भुत क्रिया को सामने लाकर देखिए कि यह संसार कितना विशाल है। इस सृष्टि को बने अरबों वर्ष व्यतीत हो गए, परन्तु इसके एक अंग का भी अभी तक पता नहीं पा सका। सारी सृष्टि तो एक ओर रही, केवल इस पृथिवी का ज्ञान भी मनुष्य प्राप्त न कर पाया। यह पृथिवी तो क्या, इसके जल अथवा स्थल–विभाग से भी यह पूर्णरूपेण परिचित नहीं हो सका। इसके पर्वत, इसके वन, इसके समुद्र, इसके मरुस्थलों का भी पूरा ज्ञान अभी तक मनुष्य को नहीं हो सका। वनस्पतियों को लें तो इनमें से सहस्रों ऐसी हैं जिनके सम्बन्ध में मनुष्य कुछ भी नहीं जानता। और तो और मनुष्य अपने ही शरीर का पूरा ज्ञान अभी प्राप्त नहीं कर पाया। इतनी बड़ी सृष्टि का ज्ञान तो इसे प्रलय–काल तक भी न हो सकेगा। तब यह नन्हीं–सी मानव–देह इस विशाल सृष्टि के सामने क्या है? और फिर इस सृष्टि का अधिष्ठाता परमात्मा तो इस सृष्टि से भी परे तक है। उसकी महानता का क्या ठिकाना।

उसकी एक नन्हीं–सी सामर्थ्य ने इस सारे दृश्यमान संसार को हमारे सामने ला खड़ा किया। क्या था यहाँ पर? सर्वथा अभाव का दृश्य था। यहाँ केवल सोई हुई प्रकृति थी– सर्वथा अव्यक्त, शान्त और निस्तब्ध! यह व्यक्त कैसे हो गई? परमात्मा के संकेत –मात्र से। प्रकृति में परमात्मा के सामर्थ्य से क्रिया उत्पन्न हुई और उस क्रिया का परिणाम 'महत्' प्रकृति का पहला रूपान्तरण है। तब महत् से अहंकार उत्पन्न हुआ, अहंकार से पंच तन्मात्र पैदा हुए। ये पंच तन्मात्र क्या हैं? इन्हीं का नाम शब्द तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र, रूप तन्मात्र, रस तन्मात्र और गन्ध तन्मात्र हैं। इन्हीं 5 तन्मात्राओं से पाँच महाभूत– (1) आकाश (2) वायु, (3) अग्नि, (4) जल, (5) पृथिवी उत्पन्न हुए। इन पाँचों महाभूतों के पाँच गुण (1) शब्द, (2) स्पर्श, (3) रूप, (4) रस और (5) गन्ध भी साथ ही आए।

अहंकार ने जहाँ यह किया वहाँ ग्यारह इन्द्रियाँ भी प्रकट कीं– पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और 11वाँ मन।

बस, इतना ही यह सारा संसार है। परन्तु अव्यक्त प्रकृति मन इत्यादि इन्द्रियों तक, यह सब–का –सब जड़ ही है। पर जड़ स्वयं तो कुछ नहीं कर सकता। इस प्रकृति की विकृति और अव्यक्त को व्यक्त करने वाला एक चेतन तत्त्व आत्मा है । सारी सृष्टि के अन्दर तथा बाहर भी ओत–प्रोत जो तत्त्व है, ब्रह्म–तत्त्व या परमात्मा कहते हैं और जो शरीरधारी प्राणियों का अधिष्ठाता है उसे आत्म–तत्त्व या जीवात्मा कहते हैं।

जिस 'महत्' से अहंकार, पंच तन्मात्र और फिर पाँच महाभूत और इन्द्रियाँ बन गईं, वही 'महत्' मानव–देह में बुद्धि या अन्तःकरण बन बैठा है। सारा सृष्टि–क्रम सामने ले आइए और तब इस प्रपंच की विशालता पर एक गम्भीर दृष्टि डालकर कुछ समय के लिए प्रभु की इस अद्भुत रचना को देखते रहिए।

यह सौर –ब्रह्माण्ड जिसके मध्य में सूर्य है और उसके चारों ओर बुध, शुक्र, मंगल, पृथिवी इत्यादि ग्रह अपने–अपने चन्द्रमाओं सहित हैं , जिसका व्यास (घेरा) अन्तिम ग्रह तक 55 अरब 18 करोड़ मील है। यह सब समष्टि जगत् की अपेक्षा इतना है, जितना पुरुष की अपेक्षा वह धूलि है जो तीन बार पैर रखने से पाँवों में लग जाए। समष्टि जगत् का प्रमाण इतना बड़ा है कि मनुष्य की बुद्धि उसे ग्रहण नहीं कर सकती। सहस्रों नक्षत्र जो अत्यन्त दूर हैं, वे हमें चमकते हुए नन्हें–नन्हें सितारे प्रतीत होते हैं। बड़ी–से–बड़ी दूरबीन से भी वे ज्योति के बिन्दु ही दिखाई देते हैं। वास्तव में सूर्य से कई गुणा बड़े हैं। सूर्य पृथिवी से 13 लाख गुणा बड़ा है। अगस्त्य तारा सूर्य से एक करोड़ गुणा बढ़ा है। जो नक्षत्र सौर–ब्रह्माण्ड के बहुत समीप हैं वे भी इतनी दूर हैं कि उस दूर के मण्डल में सात खरब 33 लाख सौर–ब्रह्माण्ड समा जाएँ। कितना बड़ा है यह संसार।

देखते–देखते जब इस विशाल संसार की कोई सीमा दृष्टिगोचर न हो तो जैसे सृष्टि के बनने का क्रम आप अपने सामने लाए थे, अब उसका लय होते हुए देखिए।

धीरे–धीरे उसी क्रम से पाँचों महाभूत सूक्ष्म होते चले जा रहे हैं। पंचभूत के अपने रूप में आने से पूर्व सारा दृश्यमान जगत् बदल रहा है। कोई भी अपना रूप स्थिर नहीं रख सका। न वृक्ष रहे, न पर्वत, न सूर्य रहा, न चन्द्र, न कोई और नक्षत्र। रह गए पंच तन्मात्र। अब वे सूक्ष्मभूत भी समाप्त हो रहे हैं, इन्द्रियाँ भी गुम हो रही हैं, रह गया है केवल अहंकार। इस अंहकार को अब महत् में लय होता देखिए। महत् में सब –कुछ समा जाने के पश्चात् अब महत् भी कहाँ रहा? वह भी तो प्रकृति में चला गया। यह प्रकृति, इस प्रकृति को सीमित में लाने की सामर्थ्य रखनेवाला परमात्मा और गाढ़ निद्रा में जाता हुआ जीवात्मा, बस ये ही तीन रह गए।

सृष्टि का बनना और बनकर फिर प्रलय–अवस्था में चले जाना, यह सारा दृश्य तथा विज्ञान ध्यान के नेत्रों से अनुभव किया जाए तो मन शान्त होने लगता है। मन को एकाग्र करने का यह एक अचूक साधन है; परन्तु जो कुछ ऊपर कहा गया है वह एकाग्रता की ओर जाने की अभी पहली मंजिल है, अभी कुछ मार्ग और चलना है।

(3) एकान्त–शान्त स्थान में या मकान के सर्वथा अकेले कमरे में, निश्चिन्त होकर आप एक आसन बैठे हैं। आपकी पीठ तथा ग्रीवा सीधी है, शरीर अधिक अकड़ा हुआ नहीं है। आपने तन्मय होकर ऊपर का सृष्टिक्रम अपने ध्यान में ला रहे हैं। आपने जब सृष्टि को प्रलय तक पहुँचा देख लिया तो अब ध्यान में किसी भी दृश्य को आने न दें। जैसे शरीर एकान्त में बैठा है, इसी प्रकार मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को भी एकान्तवासी बना दीजिए। इन्द्रियों का एकान्त होगा जब संकल्पों–विकल्पों तथा इच्छाओं का जमघट मन में न रहेगा। बुद्धि तभी एकान्त होगी जब संसार के प्रपंच उसके पास न रहेंगे। शरीर–सहित मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ नितान्त एकान्त–सेवी हो जाएँ। आपने धारणा यह करनी है कि सृष्टि–क्रमानुसार जब कोई दृश्यमान पदार्थ नहीं रहा– स्थूल महाभूत सूक्ष्म हो गए, वे सूक्ष्म भूत जिन्हें तन्मात्र कहते हैं, अहंकार में लुप्त हो गए, इन्द्रियाँ भी अहंकार में समा गईं, और अंहकार भी महत् में गुम हो गया तथा महत् प्रकृति में जा समाप्त हुआ, फिर यह सुनना, यह छूना, यह देखना, यह चखना, यह सूँघना कहाँ रह गया? इस प्रकार का दिव्यज्ञान मन की चंचलता को मिटाने में बड़ा सहायक बनता है। यह अनुभव किया जा चुका है कि नितान्त एकान्त स्थान में सृष्टि विज्ञान को ध्यान में लाने से मन स्वयमेव लय होने लगता है।

क्रमशः

वेद एवम् ऋषि ग्रन्थों में समग्र उन्नति का सन्देश

● प्रो. उमाकांत उपाध्याय

यह सर्वसम्मत ऐतिहासिक सत्य है कि भारतवर्ष की पुण्यभूमि पर जब से आर्य (हिन्दू) आकर बसे, तब से लेकर महाभारत के हजार- दो हजार साल पहले तक भारतवर्ष संसार का सर्वश्रेष्ठ, सब प्रकार से उन्नत समृद्ध देश था। यह भी प्रकृति का दैवी विधान है कि जब आवश्यकता से बहुत अधिक समृद्धि, सुख-सुविधा हो जाती है तो सर्व-साधारण के जीवन में विलास, आरामतलबी, सदाचार का पतन आने लग जाता है। समृद्धिके चरम उत्कर्ष पर, तप और सदाचार के अभाव में, दुराचार, विलास बढ़ जाने से सुरा, सुन्दरी, पारस्परिक कलह, व्यक्ति और राष्ट्र का अधः पतन होने लगता है। यह महाभारत काल में बहुत सुस्पष्ट दिखाई पड़ता है जब धर्मराज भी पक्का जुआरी, धृतराष्ट्र जैसा राजा आँखों का अंधा तो था ही, हृदय और बुद्धि से भी अति मलिन हो गया था। भीष्म पितामह और आचार्य द्रोण जैसे प्रतिष्ठित वृद्ध भी कुलवधू द्रौपदी के निष्ठुर अपमान को सह गए थे। और तो और उस युग के सर्वश्रेष्ठ पुरुष, वेद-वेदांग तत्त्वज्ञ श्रीकृष्ण अपने कुल को सर्वनाशी मदिरा-पान और अन्तःकलह से नहीं बचा पाए थे और सारे यादव अपने में ही मर मिट गए थे।

महाभारत के पश्चात् यज्ञों में पाखण्ड और पशु-हिंसा, सुरापान, बौद्धों का वज्रयान, चारित्रिक पतन, ये सभी देश के अधःपतन में सहयोगी बने। इसी के साथ तांत्रिकों का पंचमकार भी बहुमुखी पतन में सहयोगी बना। बौद्धों के अहिंसावादी उत्कर्ष में परमेश्वर को असत्य बताकर इस संसार की महिमा को प्रतिष्ठित किया। बौद्धों के कथन कि "संसार सत्य है और ब्रह्म मिथ्या है" के उत्तर में आदि शंकराचार्य ने "ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या" का सिद्धांत निरूपित किया। बौद्धों ने ब्रह्म को मिथ्या कहा तो उत्तर में शकराचार्य ने संसार को, जगत को मिथ्या कहा। "ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या" का हमारे व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पर बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ा। जो समाज के श्रेष्ठ लोग थे, विद्वान् सदाचारी नेता होने के योग्य थे, वे जगत को मिथ्या मानकर सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन से अलग-थलग हो गए और देश, राष्ट्र सब प्रकार से पतन की ओर बढ़ चला। शूद्रों का अपमान, उनसे घृणा, नारियों का तिरस्कार आरम्भ हो गया। समाज में ऊँच-नीच का भाव पैदा हो गया। साठ वर्ष के बूढे राणा, राजाओं के लिए सोलह साल की कन्याओं के डोले लड़कर भेजे जाने लगे। मुट्ठी भर हूण, पठान, मुगल आदि कच्चा मांस खाने वाले और चमड़ा पहनने वाले लुटेरों ने देश को तबाह कर दिया। महाराणा सांगा और सोमनाथ जैसे सैकड़ों, हजारों काण्ड देश में होने लगे। इस समग्र सर्वतोमुखी पतन का एकमात्र कारण यह था कि भारतवर्ष के जनजीवन से वेदों और ऋषियों के संदेश भुला दिए गए और उनकी जगह पर शंकराचार्य का जगन्मिथ्या, बौद्धों की वज्रयानी चरित्रहीनता और अहिंसा, तांत्रिकों का पंचमकार सेवन आदि देश में प्रचलित हो गए। ध्यान देने की बात है कि वेद और ऋषियों के दर्शन संसार को सर्वतोमुखी समग्र उत्थान का सन्देश देते हैं।

भारत की प्राचीन संस्कृति में "धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष" को परम पुरुषार्थ कहा गया है। यहाँ धर्म के साथ अर्थ और काम को आवश्यक माना गया है दर्शन के ऋषि कहते हैं "यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"। यहाँ सांसारिक उन्नति और मोक्ष, दोनों को धर्म का अंग बताया गया है। दर्शन शास्त्र कहते हैं। "भोगापवर्गार्थं दृश्यम्"- यह संसार भोगों को भोगने और मोक्ष की सिद्धि के लिए बनाया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है- "साधन धाम मोक्ष कर द्वारा"। महर्षि व्यास के वेदांत दर्शन के प्रथम चार सूत्रों को देखने से सिद्ध होता है कि यह संसार वास्तविक है और स्वामी शंकराचार्य की उक्ति "जगन्मिथ्या" उनकी अपनी ऊहा, सूझ-बूझ, शायद बौद्धों को पराजित करने के लिए है। वेदांत दर्शन का सूत्र है- (1) "अथाऽतो ब्रह्मजिज्ञासा"- अब ब्रह्म की जिज्ञासा करते हैं, (2) "जन्माद्यस्ययतः"- क्योंकि उसी ब्रह्म ने इस संसार की सृष्टि, पालन और प्रलय की व्यवस्था की है। (3) "शास्त्र योनित्वात्"- उसी ब्रह्म ने वेदों का ज्ञान दिया है। (4) "तत्तु समन्वयात्"- जैसा वेदों में वर्णन है वैसा ही इस संसार में पाया जाता है। अर्थात् वेदों के ज्ञान का संसार की व्यवस्था में समन्वय है। कहा जाता है कि यह संसार परमेश्वर का दृश्य-काव्य है और वेद परमेश्वर का श्रव्य-काव्य है, दोनों ही परमेश्वरकृत हैं, दोनों में समन्वय है। उदाहरण के लिए सोनी की टी. वी. और उसी का मैनुअल (बुकलेट) में समन्वय होता है। किसी और कम्पनी की टी.वी. और किसी और कंपनी के बुकलेट में समन्वय नहीं होगा। जब वेद के ज्ञान और संसार की व्यवस्था में समन्वय है तो पता चलता है कि जिसने वेद-ज्ञान दिया है उसी ने संसार का निर्माण किया है। अर्थात् जगत को परमेश्वर ने बनाया है और परमेश्वर की कृति मिथ्या नहीं हो सकती। अतः सिद्ध होता है कि 'जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त सत्य नहीं है। भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ और सर्वमान्य ग्रन्थ वेद हैं। चारों वेदों में बीस हजार से भी अधिक मन्त्र हैं, इनमें हजारों मन्त्रों में जीवन के उत्थान, सांसारिक उन्नति, अर्थ की सम्पन्नता आदि का बहुत सीधा और सुस्पष्ट उपदेश दिया गया है। उदाहरण के लिए कुछ मन्त्र और उनके सरल अर्थ यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं-

(1) "स्तुता मया वरदा वेदमाता..... आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिम् द्रविणं ब्रह्मवर्चसं, मह्यम् दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकं"- अथर्व/19/71/1. अर्थात् हमने वर देने वाली वेदमाता की स्तुति की, उसका अध्ययन किया और उस पर आचरण किया। इससे वेदज्ञान ने हमको आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, बल, सब कुछ दिया और हमको ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्ष तक पहुँचाया।

(2) "इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वद्मानम् वाचः सुदिनत्वमह्नम्" - ऋग/2/21/6. अर्थात् हे ऐश्वर्य देनेवाले परमेश्वर, हमें श्रेष्ठ धन, संपत्ति दीजिए, हमें ज्ञान और दक्षता प्रदान कीजिए जो हमारे जीवन का पोषण करे, हमको मधुर प्रभावशाली वाणी दीजिए और हमारे जीवन में सदा सब दिन सुदिन सुन्दर बने रहें।

(3) "उद्यानं ते पुरुष नावयानं, जीवातुम् ते दक्षतातिं कृणोमि - अथर्व/8/1/6 अर्थात् परमेश्वर मनुष्य को आश्वासन उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो, हमने तुमको मनुष्य जीवन इसलिए दिया है कि तुम सदा अपने जीवन में, अपने समाज में उन्नति करते रहो, ऊपर उठते रहो और कभी अवनति न करो। तुम और तुम्हारा समाज कभी पतन की ओर न जाए। तुम्हरे जीवन में सदा दक्षता, सबलता बनी रहे। इसका भाव यह है कि परमेश्वर ने हमें हमारे जीवन को उन्नति और दक्षता का वरदान दिया है।

(4) "प्रजापते..... यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्" - ऋग 10/121/10. अर्थात् हे सब प्रजाओं के पालन करने वाले परमेश्वर, हम जिस-जिस पदार्थ की कामनावाले होकर आपका आश्रय लें, आपसे प्रार्थना करे, वह हमारी सभी इच्छाएँ पूर्ण हों और आप की कृपा से सब प्रकार के धन और ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

इस छोटे से लेख में हम यह प्रयास कर रहे हैं कि मानव सभ्यता के श्रेष्ठ ग्रन्थ वेदों में और ऋषियों के उपदेशों में हमें यह बताया गया है कि हमारा जीवन, हमारा समाज, यह संसार, सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति के लिए परमेश्वर ने बनाया है तथा यह जगत मिथ्या नहीं है। हमारा देश और हमारा समाज जब तक इस आदर्श पर चलता रहा, हम संसार के सर्वाधिक सुखी संपन्न राष्ट्र बने हुए थे। इन उपदेशों को भुलाकर, संसार की उपेक्षा करके हम निर्बल हो गए।

ईशावास्यम्
पी-30, कालिन्दी हाउसिंग स्कीम,
कोलकाता-700071.

फोन पर वैदिक-आध्यात्मिक चर्चा करें।
(केवल पुरुष वर्ग)
आध्यात्मिक मित्र मंडल मेरठ
मो. 9927887788

भोगवाद और भौतिकवाद ही सुरसावाद है

● ओम कुमार आर्य

रामायण' और 'महाभारत' हमारे इतिहासग्रंथ भी है और काव्यग्रंथ भी। बल्कि यह कहना भी गलत नहीं है कि ये हमारे काव्यात्मक इतिहास हैं। यह भी सही है कि समय के साथ इन ग्रन्थों में मिलावट भी बहुत हुई। अलग–2 लेखकों ने इनको अलग–अलग ढंग से प्रस्तुत किया। संस्कृत में लिखी महर्षि बाल्मीकि की 'रामायण' हिन्दी में लिखे गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' (प्रचलित नाम 'रामायण') से पूरी तरह मेल नहीं खाती। इसी प्रकार 'जय' से प्रारंभ होकर 'भारत' होती हुई 'महाभारत' तक की 'महाभारत' ग्रन्थ की यात्रा भी अपने साथ कितने ऐसे प्रक्षिप्तांश ले आई है जो मूल कथा से संबद्ध न होते हुए भी 'महाभारत' की कथा के अभिन्न अंग बने हुये हैं। यहाँ यह बताने का मेरा उद्देश्य मात्रा यह है कि हम आज उन सभी आख्यानों, उपाख्यानों अवांतर कथाओं, उपकथाओं का (जो इन ग्रंथों में मिलती हैं) पूरी तरह समर्थन या अनुमोदन नहीं कर सकते। उनमें से अधिकांश प्रसंगों की ऐतिहासिक प्रामाणिकता भी संदिग्ध है। किंतु हम ऐसे आख्यानों का प्रतीकात्मक महत्त्व, उनका संदेश, वर्तमान में उनकी प्रासंगिकता है भी या नहीं है, आदि–आदि पर विचार करके उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं, उनकी काफी कुछ उपादेयता हमारे लिए आज भी है, ऐसा मेरा मानना है।

ऐसा ही एक उपाख्यान है जो हनुमान के समुद्र –लंघन से जुड़ा हुआ है। जिसमें सुरसा राक्षसी समुद्र–लंघन के समय बड़ी भारी बाधा उपस्थित करने का प्रयास करती है। आइए, संक्षेप में देखें कि वह पूरा प्रकरण क्या है। उक्त प्रकरण 'रामचरितमानस' में 'सुन्दर काण्ड' के प्रारंभ में आया है, और मुश्किल से चार–पाँच पृष्ठों का ही है। उपाख्यान बतलाता है कि जाम्बवन्त द्वारा प्रशंसित और प्रोत्साहित होकर हनुमान जी समुद्र लाँघने को तत्पर हुए और अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में–

जामवन्त के वचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए। और फिर हनुमान जी यह कहकर अपनी यात्रा पर निकल पड़े कि –

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होई काजु मोही हरष विसेषी।।

यह कहि नाई सबन्ह कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा।।

जब वे समुद्र तट पर आए तो रास्ते में एक पर्वत देखा, उसको आसानी से पार कर लिया। मैनाक पर्वत ने चाहा कि हनुमान जी उस पर विश्राम करें, किंतु हनुमान जी यह कहकर आगे बढ़ गए कि–

हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रणाम राम काजु कीन्हे बिनु मोहि कहाँ विश्राम।।

अर्थात् हनुमान ने मैनाक पर्वत को बस हाथ से छू भर दिया, फिर सादर प्रणाम किया और कहा कि मुझे मेरे स्वामी राम का कार्य पूरा किए बिना विश्राम कहाँ। शायद किसी अंग्रेजी के कवि ने ये पंक्तियाँ हनुमान जी के लिए ही लिखी थीं–

Woods are lovely, fairand deep
But I have promisses to keep
And miles to go before I sleep

(वन प्रान्त बहुत ही आकर्षक, रमणीक और सुहावना है। किंतु मुझे तो अपने कुछ वचन और वायदे निभाने हैं। इस से पूर्व कि मैं निद्रा देवी की गोद में आराम करूँ, मुझे तो मीलों और मीलों की यात्रा पूरी करनी है।) और फिर है उपाख्यान का वह अंश, जो है तो अत्यंत छोटा पर सारगर्भित है, भोगवाद और भौतिकवाद की ओर संकेत भी करता है और इन से बच निकलने का रास्ता भी बतलाता है। हनुमान का सामना सुरसा नामक राक्षसी से होता है जो सर्पों की माता है और जिसको देवताओं ने हनुमान के बल, बुद्धि और पराक्रम को जानने के लिए (परीक्षार्थ) भेजा है। उसने हनुमान को अपने मुँह में लेकर उदरस्थ करने का प्रयास किया तो हनुमान जी ने कहा कि हे माता, मुझे जाने दो, मैं श्री रामचंद जी के सौंपे कार्य को पूरा करने जा रहा हूँ। कार्य पूरा कर लेने पर मैं स्वयं आकर तुम्हारा आहार बन जाऊँगा, मुझ पर विश्वास करो, मुझे जाने दो–

राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कह सुधि प्रभुहि सुनावौं।।
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई।।

लेकिन सुरसा नहीं मानी। उसने मुँह खोला और हनुमान को अपने मुँह में ले लिया। हनुमान ने अपना आकार बढ़ा लिया, तो सुरसा ने भी अपना मुख–विवर और अधिक फैला लिया। दोनों में मानों होड़ लग गई। सुरसा जितना मुख का आकार बढ़ाती थी, हनुमान उससे दो गुना आकार बढा लेते थे। 'रामायण' में आता है–

जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।।
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा। अति लघुरूप पवन सुत लीन्हा।।

यहाँ जो जन (योजन) शब्द आया है, एक योजन चार कोस के बराबर माना जाता है तो 100 योजन तो चार सौ कोस हो जाएगा। इससे सहमत नहीं हुआ जा सकता किंतु यह माना जा सकता है कि सुरसा ने जब अपना मुख बहुत बड़े आकार का कर लिया तो हनुमान जी झट से बहुत ही लघुकाय बन गए और सुरसा के मुख से बाहर निकल गए। तब सुरसा भी प्रसन्न हुई, उसने यह रहस्य भी हनुमान जी को बता दिया कि –

राम काजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान। आसिष देइ गई सो, हरषि चलेउ हनुमान।।

अब देखना यह है कि यह 'सुरसावाद' क्या है? इसका भोगवाद, भौतिकवाद, एषणावाद आदि से क्या संबंध है? और इस आख्यान में उक्त 'वादों' से बचने का कौन सा उपाय भी सुझाया गया है? वास्तव में यह प्रकृति ही 'सुरसा' 'सु' रसा है क्योंकि इंद्रिय–सुख और विषय वासनाओं के पंक में धँसा–फँसा जीवात्मा अज्ञानतावश यह माननमा है कि प्रकृति के पदार्थों में 'रस' है, वे रस की खान हैं और जिसकी देन ये सब रसीले पदार्थ हैं, सुखो पभोग के ये साधन हैं। वह प्रकृति 'सुरसा' है।

जीवात्मा उसमें अधिक, और अधिक, संलिप्त होता जाता है, 'प्रत्याहार' को भूल प्रकृति प्रदत्त पदार्थों के रसास्वादन में लगा रहता है। यही उसकी भोगवाद, भौतिकवाद, सुरसावाद और एषणावाद की उपासना है, पूजा –आराधना है और यही प्रवृत्ति जीवात्मा के दु:खों का मूलकारण भी है।

तो सुरसावाद से छुटकारा कैसे मिले? भोगवाद, भौतिकवाद (Materialism) एषणावाद से मुक्ति कैसे मिले? भोगों में प्रवृत्ति से भोग लालसा कभी शांत नहीं होगी। उपनिषद का ऋषि कहता है कि जैसे जलती आग पर घी डालते रहने से आग बुझने की बजाय और अधिक प्रचण्ड होती जाती है उसी तरह से भोगों में रूचि से भोगों का शमन नहीं होता, वे और अधिक बढ़ जाते हैं। और एक दिन हम उस स्थिति में पहुँच जाते हैं जिसका चित्रण महाराज भर्तृहरि ने यूँ किया है–

भोगा न भुक्ताः वयमेव भुक्ताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।

अर्थात् भोग ज्यों के त्यों बने रहते हैं, भोगते–2 हम चुक जाते हैं, मिट जाते हैं तृष्णा तरूणी की तरूणी (युवती) बनी रहती है, हम पर बुढ़ापा छा जाता है। इसलिए बचने का उपाय भोगों के साथ प्रतिस्पर्धा करते हुए उनके साथ दौड़ते रहने में नहीं हैं बल्कि विरमित होकर 'त्यागवाद' की ओर लौटने में है– 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' का मार्ग ही बचाव का एक मात्र मार्ग है। 'प्रेय' की भूल भुलैयों से बाहर निकल कर 'श्रेय' की शरण में जाना ही 'सुरसावाद' से मुक्ति पाने का एक मात्र उपाय है। यहाँ गौरतलब है कि सुरसा के मुख के बढ़ते आकार से अपना आकार दोगुना बना लेना भी हनुमान को सुरसा की पकड़ से नहीं छुड़ा सका, हाँ वे तुरन्त अर्तयंत 'लघु' बने और सुरसा के मुख से बाहर निकल गए। अपने को समेटना सिकुड़कर अंतर्मुख हो जाना ही भोगवाद भौतिकवाद, एषणावाद को मात देने का एक मात्र कारगर उपाय है। इसी उपाय से हनुमान सुरसा की पकड़ से बाहर निकले। पौराणिक परम्परा में मंदिरों के मुख्य द्वारों के सामने पत्थर पर 'कच्छप' (कछुए) की आकृति बनी होती है। कछुए को जब भी संकट का आभास होता है वह अंगों को सिकोड़ लेता है। इसलिए कच्छपाकृति का प्रतीकार्थ यह है कि सांसारिक विषय वासनाएँ बड़ा खतरा हैं। सावधान रहो, इंद्रियों को उनकी ओर मत भागने दो, अंदर की ओर लौटालो, मन में स्थित कर लो, और उससे भी आगे 'आत्मस्थ ' कर लो। 'स्व' में स्थित रहोगे तो 'स्वस्थ' भी रहोगे अन्यथा रोगों से ग्रस्त रहोगे, त्रस्त रहोगे।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि जब सुरसा की पकड़ से हनुमान बाहर निकले, एक प्रकार से सुरसा को पराजय और हनुमान को विजय मिली तो सुरसा ने हनुमान को शुभकामनाएँ दीं , अपना शुभाशीर्वाद दिया। जो स्पष्ट संदेश देता है कि सुरसा–प्रकृति, भोगवाद, भौतिकवाद, एषणावाद के चंगुल में फँसे रहे तो हम 'दास' होंगे और ये 'वाद' हमारे क्रूर स्वामी होंगे। यदि हम इन्हें अपने अधीन रखेंगे तो हम सुखी, स्वामी होंगे और ये हमारे विनम्र सेवक होंगे। ये सभी वाद Materialism के अंतर्गत आ जाते हैं, अतः स्मरण रहे कि Materialism is a good servanl but a bad master रामायणान्तर्गत आया सुरसा–उपाख्यान आज के दु:खी मानव के लिए बहुत ही उपयोगी है, बहुत ही प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रकरण मनुष्य को सुख, शांति का मार्ग बतलाता है। यह प्रकरण स्पष्ट संदेश देता है कि सुख 'भोग' में नहीं, 'त्याग' में है। प्रसन्नता 'बाहर' नहीं अंदर है, सुख व्यर्थ के विस्तार और फैलाव में नहीं, अपने को समेटने और सिकोड़ने में है। सारे आख्यान का सार यह है कि–

सुरसावाद, भोगवाद, भौतिकवाद ये सब असाध्य महारोग हैं, जिनसे आज मानव परेशान है। जितना इनके साथ चलोगे, उतना ही उलझते जाओगे। भोग भोगते रहने से भोगों को मिटा न पाआगे।।

अपने को समेट 'लघुकाय' बनो तब जाकर होगा–समाधान छोटा बनकर ही निकले थे सुरसा –मुख से वीर हनुमान।।

1607/7 जवाहर नगर पटियाला चौक जींद (हरियाणा) 126102

अहिंसा द्वारा न्यायपूर्ण शांति और युवा

● पं. रामस्वरूप

एक मानव दूजे मानव की रक्षा सब तरह से करे' (वेदमंत्र–अनुवाद) इस प्रकार वेद में कई मंत्र हैं जिनमें गौ व अन्य प्राणियों की रक्षा, हरियाली, मिट्टी, पानी, हवा की रक्षा मानव करें, ऐसी प्रेरणा है। 'अभय' शब्द वेद में आता है। डरें नहीं और डराएँ भी नहीं। इस प्रकार के चयन भारतीय मूल के पुराण, जैनागाम, बौद्धपिटक गुरुग्रंथ, तिरूक्कुरूल आदि प्रेरणा ग्रन्थों में मिलते हैं। पारसी जेंदावस्ता, पुरानी नई इंजीले, कुरान आदि में अंहिसा/सर्वहित प्रेरक वचन मिलते हैं। सब के सब स्वाभाविक जीवन नियत समय तक सम्मानपूर्वक जिएँ, यह एक मात्र अंहिसापूर्ण जीवन शैली से ही संभव है। पातंजल योग को लें, जैन प्रेक्षा, बौद्ध विपश्यना या जो भी अपने आप को जानने पहचानने, अपने से जुड़ने की पद्धति है उसमें सबसे पहले अंहिसा है।

एक दूजे के अधिकार/हक को बचाना न्याय है। किसी की जमीन को न छीनना 'न्याय' है। अपगाण स्थान–अफगानिस्तान से बर्मा–म्यामार तथा श्रीलंका से त्रिविष्टप–तिब्बत आर्यावर्त्त कहा जाता है। इसमें 9 देशों के बीच में भारत है। भारतीय मूल के पंथों की जमीन छीनी जाती रही है। छिनी हुई जमीन को प्राप्त करना न्याय है, छिनी जमीन दिलाने में सहायता करना 'न्याय' है।

जितने भी प्रकार के अस्तित्व हैं उनमें संतुलन लगातार बना रहे इसे 'शांति' कहा जाता है। शांति मंत्र में द्यु–सूर्य, अंतरिक्ष, पृथिवी, जल, औषधि में शांति रहे, वनस्पति सब प्रकार के प्राणी (यानि विश्वेदेवा) में शांति रहे, निरंतर वर्धित मानवीय ज्ञान में शांति रहे, सबमें शांति रहे, उसे–मुझे शांति रहे। तो संतुलन बना रहे, उसका आधार है 'न्याय'। ध्यान रहे निष्पक्ष है तभी न्याय है, पक्षपात है तो फिर अन्याय है। जम्बूद्वीप–एशिया के सारे देश हों, और महाद्वीपों के देश हों, छोटे–बड़े द्वीप समूह या एक द्वीप वाले देश हों– यानि 200 (+) देशों में न्यायपूर्ण शांति हो। तो यह अंहिसा से ही संभव है। कई गिरोह हैं जो जगह–जगह पर विस्फोट करते हैं, निर्दोष जन काल के ग्रास हो जाते हैं और अनेक प्रकार से हानि होती है। परन्तु आतंककारी गिरोह हिंसा बढ़ाते रहते हैं, क्रूरता करते रहते हैं।

किसी पंथ में दूसरे सब पंथ वालों को नष्ट करने का दुर्भावन हो। एक दूजे के प्रति अपनापन, आत्मीयता हो। ऐसी प्रेरणा सभी पंथाचार्यों द्वारा विद्युतीकरण–माध्यम इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से दी जाए, मुद्रित–प्रेस पत्र आदि से भी ऐसी प्रेरणा का प्रचार होना चहिए। अन्य प्रकार से भी हो। यह सुनिश्चित है कि अंहिसा ही एक मात्र मार्ग है, और कोई नहीं।

विभिन्न आस्था (मजहब, रिलीजन) के ग्रन्थों में संकेत होते हैं कि मानव कैसा बने? परमेश्वर के गुणों में बताया गया है अभय, निर्विकार, न्यायकारी, पवित्र, दयालु। वेद में यह संकेत है। दूसरे प्रेरणा ग्रन्थ भी इन पाँचो को स्वीकारते हैं। तो अभय यानि जो डराए नहीं, डरे नहीं। यह गुण सब पंथाचार्यों में हो। पंथानुयायियों को इस सद्गुण से संपन्न करते रहें पंथाचार्य। इसी में पंथाचार्यों की सफलता है। आतंक अत्याचार, अपहरण, हत्या आदि अभय/अहिंसा के विरूद्ध हैं। मानव मात्र एक दूजे की रक्षा सब तरह से करे तो धरती पर स्वर्ग मिलेगा, हर गाँव–शहर में, देश में।

सभी देशों में अनेक जातियाँ होती हैं। सारी ही जातियों में स्नेह हो। कोई एक जाति किसी दूसरी जाति को न तो अछूत माने, न नीची माने। नीच मानने का तो सवाल ही नहीं। ध्यान रहे आतंक, अत्याचार आदि करने वाला/वाले नीच हैं। आतंक आदि अमानुषिक है राक्षसी व्यवहार है। तो सभी जातियों में अपनापन हो, बेगानापन कतई न हो। किसी संत की सीख है ''मानुस को जात समझै' एक ही समान हो''। तो सब गाँवों, शहरों, देशों में 'सर्वजातीय स्नेह' ही हो। तभी तो एक मानव द्वारा दूजे मानव की रक्षा होती रहेगी।

भारत में तो सैकड़ों पंथ हैं जिन्हें संप्रदाय या मत भी कहा जाता है। शैव, जैन,वैष्णव, बौद्ध, शाक्त, सिख, गाणपत, तिरूक्कुरूल हैं जिनके अनुयायी करोड़ों है। कबीरपंथ, रामस्नेह, दादू पंथ, रैदास, उदासीन आदि मुगल काल के हैं, तो ब्राह्म, प्रार्थना, आर्य समाज, रामकृष्ण मठ, राधास्वामी मत, अरविंद आश्रम आदि अंग्रेजकाल के हैं। इनके अनुयायी लाखों की संख्या में हैं। अन्य देशों से आए पंथों में पारसी, यहूदी हैं जिनके लाखों अनुयायी हैं। मुस्लिम व मसीही हैं करोड़ों संख्या वाले। विभिन्न महाद्वीपों में तरह–तरह के पंथ हैं। एशिया में भारत के अलावा, चीन में ताओ आदि हैं, जापान में शिंजो आदि हैं। एशिया के पश्चिम में यूरोप (हरिवर्ष) से लगे क्षेत्र में यहूदी, मसीही, मुस्लिम बहुल हैं।

सब संप्रदाय वालों में सद्भाव हो, सारे पंथ एक–दूजे का समान रूप से आदर करें। तो सहज भाव से बाल सुलभ सरलता से सब जगह संप्रदाय सद्भाव यानि सर्वपंथ समादर हो, और भी कोई नाम दिया जा सकता है। सह अस्तित्व का व्यवहार पूरी लगन, पूरी–पूरी ईमानदारी से हो। यह सर्वसुलभ हो। एक ही पंथ वालों में आपस में जितना अपनापन होता है, उतना ही अपनापन दूसरे पंथ वालों के लिए भी हो। एक कदम आगे बढ़ा जाए, अन्य पंथ वालों से अपने पंथ वालों से भी ज्यादा हो अपनापन, आत्मीयता।

व्यवसायों को हिंसा से मुक्ति दिलाई जाए। तरह–तरह के प्राणियों का वध करने वाले व्यवसायी हैं। गौ जैसे प्राणी जो दूध नहीं देने पर भी गोबर, गौमूत्र से ही आर्थिक लाभ देती हैं, उसके माँस का निर्यात करते हैं। तरह–तरह से जो कसाई, खटीक आदि हैं उनसे पशुपालन का शुभ कर्म कराया जा सकता है। भारत पड़ौसी देश (दक्षेस) दूर देश या सुदूर देश हों, हर गाँव में ग्राम–गौशाला हो सकती है। जहाँ बिन दूध की गाएँ रहें। इनके गोबर को पकाने गौमूत्र से कीट नियंत्रक बनाने या अर्क आदि निकालने का पर्यावरण सुखकारी उत्पादन कराया जाए। हिंसा घटती चलेगी। भारत में 6 लाख (+) गाँव हैं। हर गाँव में 'गौ कृषि आदि प्रतिष्ठान' हो सकता है। जो सारे गाँवों में ग्राम गौ–शाला का पोषण कराता रहे। तरह–तरह के कसाई प्राणियों को पालने लगें सारे ही महाद्वीपों के सब देशों में, तो अहिंसा को कितना बल मिलेगा। भारत के गुजरात राजस्थान में गीर गाया हैं। इसका सदुपयोग न्यूजीलैण्ड, ब्राजील, हौलेण्ड आदि में किया जा रहा, परिणाम शुभ मिल रहा।

तरह–तरह के आमिष अण्डा, मछली, माँस, भक्षण करने वाले लोग हैं। सभी देशों में, इन्हें शाकाहारी बनाया जाए। जो शाकाहारी हैं उन्हें बनाया जाए गव्य शाकाहारी, यानि काली भैंस, रंगीन भैंस (जरसी हालिस्टिन) का नहीं भारतीय गौमाता ठाण झालर वाली, पीला दूध देती जो बादी, गर्मी, कफ घटाए। जहर का कुप्रभाव दूर करे। उसका दूध, दही, छाछ, मक्खन, घी का सेवन करें, ये कहलायें गव्य शाकाहारी। विश्व के 700 करोड़ मानव या डेढ़ सौ करोड़ परिवार गव्य शाकाहारी बना दिये जाए। पूरी धरती माँ खिल जाए।

जैसे किसी प्राणी की कहीं गर्दन न कट सके, पृथ्वी पूरी की पूरी ही अभय अरण्य/अभय/नगर/अभय ग्राम/अभय आगार बना दी जाए। विश्व के 200 (+) देश के नागरिक गौवान्वित हों कि उनके देश के सारे ही प्राणी सुरक्षित हैं। भारतीय संविधान 48 व 51 में तो प्राणी रक्षा स्पष्ट रूप से कही है। इसी प्रकार से हरियाली की, हरे पेड आदि की जड़ कहीं नहीं काटी जाए ऐसे सब देश बना दिए जाए। हाँ पेड़ झाड़ आदि की छँटाई तो की जाती रहे। हरियाली में अहिंसा बढ़ानी है तो कम से कम आधी जमीन में पेड़ (+) तो लगा ही दें सरकारें। उद्यमों कारखानों को ऐसा बना दें कि उपजाऊ मिट्टी, पृथ्वी, पानी, हवा न बिगड़े न जहरीलें किए जाए। हर उद्यम की भी आधी जमीन में पेड़ हों, चिकित्सालय, शिक्षालय, आवास आदि सब की आधी जमीन में पेड़ करा दिए जाए। तो कितनी प्राणवायु/आक्सीजन बढ़ेगी, हरियाली बढ़ाने, उद्यम आदि पर्यावरण सुखकारी बनाने, गौ केन्द्रित कृषि कराने से अहिसा दिन–दूनी बढ़ेगी।

राष्ट्र राज्य (नेशन स्टेट) की बात करें तो कुछ देशों ने समीप के देशों के क्षेत्रों व नागरिकों पर अवैध कब्जा कर रखा है, यह हिंसा क्रूरता है। तो सं.रा.सं./यू.एन. ओ. निरन्तर सुचेष्टा करे कराए। अवैध कब्जा जो देश छोड़ेंगे तो दबे–कुचले देशों के जन की शुभकामना/दुआ मिलेगी, अहिंसा खिल खिलाएगी।

लोकतांत्रिक शासन में सबसे पहले है जन प्रतिनिधि। गाँव के सरपंच से लोक/राष्ट्रीय यानी लोक सभासद। इनके नियोजित प्रयास से बंधुता/अहिंसा बढ़ सकती है। प्रशासक, आरक्षी–पुलिस, न्यायकर्त्ता, सेना आदि 'अहिंसक' बनते चलें। वीरता और अहिंसा एक दूजे के विरोधी नहीं हैं। सशस्त्र वीरता और निःशस्त्र वीरता का अपना अपना महत्त्व है। शस्त्र स्पर्धा किन्हीं दो वीरों में हो रही है या दो समूहों में हो रही है तो शस्त्र से घायल करना वीरता नहीं। शस्त्र गिरवा देने से ही वीरता का पता चल जाता है। जिसका शस्त्र छूटा उसकी उँगली, हाथ, सीना, चेहरा, पेट, पाँव आदि पर घाव न हो। निःशस्त्र वीरता के कई देशों में उदाहरण मिलते हैं। भारत में ऋषि–मुनि, तीर्थंकर महावीर, तथागत बुद्ध, अनेक संत, गुरूनानक आदि, ऋषि दयानन्द, महात्मा मो० क० गांधी व और कई उदाहरण हैं।

अभय/अहिंसा के लिये ऋषि दयानन्द ने 'सर्वहित' शब्द का उपयोग किया है। सामाजिक सर्वहितकारी नियम के पालने में पर (समाज) तंत्रता, इसे उदाहरण से समझें। व्यक्ति के लिए कुटुंबतंत्रता, कुटुंब के लिए ग्रामतंत्रता, ग्राम (नगर प्रांत) के लिए राष्ट्रतंत्रता, राष्ट्र के लिए समूह राष्ट्र (जैसे दक्षेस–सार्क) तंत्रता, समूह राष्ट्र के लिए महाद्वीप तंत्रता, महाद्वीप (एशिया–जंबूद्वीप आदि) के लिए सार्वभौम (ग्लोबल) तंत्रता। तो व्यक्ति हो दंपती के लिए शांतिकारी, दंपती हो परिवार के लिए शांतिकारी परिवार हो कुटुम्ब के लिए शांतिकारी, कुटुम्ब हो, ग्राम–नगर वास्ते शांतिकारी ग्राम (नगर, प्रांत) राष्ट्र वास्ते शांतिकारी, राष्ट्र हो समूह राष्ट्र हेतु शांतिकारी, समूह राष्ट्र हों महाद्वीप के लिए शांतिकारी, महाद्वीप हो समस्त पृथ्वी हेतु शांतिकारी। इस तरह 'अहिंसा द्वारा न्यायपूर्ण विश्व शांति' के लिए युवा यानी युवती–युवक के विभिन्न संगठन एकत्र करें।

आर्यसमाज वेदानुयायी परमेश्वर

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

ऋग्वेद मण्डल 8 में ईश्वर स्तुति–

● शिवनारायण उपाध्याय

स्तुति का अर्थ किसी भी व्यक्ति के गुणों का कथन, ईश्वर स्तुति का अर्थ है ईश्वर के गुणों का कथन अथवा कीर्तन। ईश्वर के गुणों के कीर्तन वा कथन का लाभ तभी मिल सकता है जब हम उन गुणों को अपने अन्दर धारण करने का प्रयत्न करें। हमारे शास्त्रों में आचरण को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। कहा जाता है कि वही व्यक्ति विद्वान् है जो अपने ज्ञान को आचरण में लाता है। क्योंकि केवल ज्ञान से तो व्यक्ति अथवा समाज का कोई भला होने वाला नहीं है। ज्ञान का लाभ ता तभी मिलेगा जब उसे कर्म के साथ संयुक्त किया जाएगा। यही कारण है कि यजुर्वेद में कहा जाता है कि जो केवल अविद्या (कर्म) की उपासना करता है वह अंधकार में जाता है और जो केवल ज्ञान की उपासना करता है वह उससे भी अधिक अंधकार में जाता है, क्योंकि कर्म का तो कोई न कोई फल है परन्तु केवल ज्ञान का कोई फल नहीं है। यजुर्वेद में यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति ज्ञान और कर्म संयुक्त कर कार्य करता है वह अविद्या (कर्म) से मृत्यु को जीत लेता है तथा विद्या (ज्ञान) से अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है। हम इस लेख में ईश्वर के जिन गुणों को स्तुति द्वारा बता रहे हैं उनको अपने जीवन में भी धारण कर जीवन को सफल बनाना है। स्मरण यह भी रखना है कि ईश्वर के सभी गुणों को हम अपने जीवन में उसी रूप से धारण नहीं कर सकते हैं जैसे वे ईश्वर में धारित हैं। वह सर्वशक्तिमान है परन्तु हमारी शक्ति अल्प है वह सर्वव्यापक है और हम एक देशी हैं। वह अजर, अमर है परन्तु हमारा शरीर जीर्ण होने वाला है, शारीरिक दृष्टि से जब आत्मा इसे छोड़ देता है तब यह मृत हो जाता है। आओ अब हम वेद से ईश्वर की स्तुति करें।

वस्याँ इन्दासि मे पितुरूत भ्रातर भुञ्जतः।
माता च मे छद्यथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे। ऋ. 8.1.6.

अर्थ–(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवान् परमात्मन् (अभुञ्जतः) अपालक (पितुः) पिता (उत) और (भ्रातुः) भ्राता से (वस्यान्, असि) आप अधिक पालक हैं। (वसो) हे व्यापक परमेश्वर। आप (च) और (मे) मेरी (माता) माता दोनों ही (वसुत्वनाय) मेरी व्याप्ति के लिए तथा (राधसे) ऐश्वर्य के लिए (समा) समान (छद्यथः) पूजित बनाते हैं।

भावार्थ– इस मंत्र का भाव यह है कि जिस प्रकार माता हार्दिक प्रेम से पुत्र का लालन करके सदा उसकी भलाई करती है उसी तरह ईश्वर भी मातृवत् सब जीवों की हितकामना करता है। मंत्र में पिता भ्राता सब सम्बन्धियों का उपलक्षण है अर्थात् ईश्वर सब सम्बंधियों से बड़ा है और माता के समान कथन करने से इस बात को दर्शाया है कि अन्य सम्बन्धियों की अपेक्षा माता अधिक स्नेह करती है और माता के समान ही परमात्मा सब मनुष्यों का शुभचिन्तक है।

स्तुति के साथ ही परमात्मा के प्रति समर्पण की भावना भी आवश्यक है।

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः। ऋ.8.1.15

अर्थ– यदि परमात्मा मेरी स्तुति को सुने तो मेरे यज्ञ, जो जलादि पदार्थों द्वारा सम्पादित करके शीघ्र ही सिद्ध किए हैं वे दुष्प्राप्य शुद्ध परमात्मा को प्राप्त होकर मुझको हर्षित करें।

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ऋ.8.1.20

अर्थ– स्तुति युक्त वाणी द्वारा सदैव परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करते हुए यज्ञों में परमात्मा सम्बन्धी वाणी पूछने पर तुम पर क्रोध न करें क्योंकि सबका भरण पोषण करने वाले सिंह समान ईशन करने वाले परमात्मा से कौन मनुष्य याचना न करेगा अर्थात् सभी पुरूष उससे याचना करते हैं।

ईश्वर की स्तुति सर्व काल में जा सकती है।

मम त्वा सुर उदिते मम मध्यन्दिते दिवः।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत। ऋ.8.1.29

अर्थ– हे सर्व व्यापक परमात्मा। सूर्योदय काल में मेरी स्तुतियाँ, दिन के मध्य में मेरी स्तुतिएं रात्रि प्राप्त होने पर भी मेरी स्तुतियाँ आप पुनः स्मरण करें।

परमात्मा के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए ईश्वर की स्तुति करते रहना है।

स्तुहि स्तुहीदेते घा मंहिष्ठासो मघोनाम्।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे। ऋ.8.1.30

अर्थ–(मेध्यातिथे) हे पूज्य अभ्यागत। (मघोनां, मंहिष्ठासः) ऐश्वर्यशालियों में श्रेष्ठ (एते) वह परमात्मा है, अतः (ते) उसकी (स्तुहि, स्तुहि) बार बार स्तुति कर। (इत् ध) निश्चय करके वह परमात्मा (निन्दिताश्वः) सब व्यापकों को अपनी व्यापक शक्ति से तिरस्कार करने वाला (प्रपथी) विस्तृत मार्ग वाला (परमज्याः) बड़े से बड़े शत्रुओं का नाशक और (मघस्य) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का प्रदाता है।

परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है और वही कर्मफल प्रदाता है।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा।
त्वं यज्ञेष्वीड्यः ऋ.8.11.1

अर्थ– हे परमात्मन्! सर्वत्र प्रकाश करते हुए आप सभी मनुष्यों के मध्य में कर्मों के रक्षक हैं। इससे आप यज्ञों में प्रथम ही स्तुति किए जाते हैं।

ईश्वर के विभिन्न गुण वाचक नामों से उसकी स्तुति करें।

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे।
विप्रासो जातवेदसः। ऋ.8.11.5

अर्थ–मरण धर्म वाले हम विद्वान् सब वस्तुओं को जानने वाले मरण रहित आपके इन्द, वरूण, अग्नि आदि बहुत से नामों को जानते हैं।

परमात्मा सर्वद्रष्टा होने के साथ ही सबका स्वामी भी है।

पुरूत्रा हि सदृङ्.सि विशो विश्वा अनु प्रभुः।
समत्सु त्वा हवामहे। ऋ.8.11.8

अर्थ– हे परमात्मन्। आप सर्वत्र ही समान द्रष्टा हैं, इससे सब प्रजाओं के प्रति प्रभु हो रहे हैं। इसलिए हम आपको संग्रामों में आह्वान करते हैं।

परमात्मा स्तुति द्वारा प्रार्थना किए जाने पर आरोग्यता भी प्रदान करता है।

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति
येना हंसि न्य त्रिणं तमीमहे। ऋ.8.12.1

अर्थ– हे इन्द्र। हे अतिशय बलवान। हे परमपूज्य देव। जो तेरा अतिशय पदार्थों की रक्षा करने वाला अथवा कृपा दृष्टि से अवलोकन करने वाला आनन्द सर्व वस्तु को यथातथ्यतः जानता है और जिस सर्वज्ञ मद के द्वारा तू जगद् भक्षक उपद्रव का हनन करता है उस मद (आनन्द) की हम उपासक गण प्रार्थना करते हैं।

वेद का कथन है कि केवल मनुष्य ही नहीं वरन् सम्पूर्ण प्रकृति ही उसकी स्तुति कर रही है–

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत्।
पुरूप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत्। ऋ.8.12.14

अर्थ– और यह अखण्डनीय अदीना और प्रवाह रूप से नित्या प्रकृति देवी भी स्वयं विराजमान इन्द्र नाम धारी परमात्मा के लिए बहु प्रशंसनीय स्तोत्रों को उत्पन्न करती है। जो स्तोत्र इस संसार की रक्षा के लिए परमात्मा को प्रेरित करता है।

परमात्मा इस पृथ्वी, द्युलोक और आकाश से भी बहुत बड़ा है अतः ये कोई भी उसे अपने में नही रख सकते हैं।

न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम्।
अमादिदस्य तित्विषे समोजसः। ऋ.8.12.24

अर्थ– द्युलोक और पृथ्वी लोक जिस दण्डकारी इन्द्र को अपने समीप से पृथक् नहीं कर सकते अथवा उसको अपने में समा नहीं सकते और मध्य स्थानीय आकाश लोक भी जिसको अपने अपने समीप से पृथक् नहीं कर सकते, उस महाबली इन्द्र के बल से ही यह सम्पूर्ण जगत् अच्छे प्रकार शासित हो रहा है। हमें यह भी जानना चाहिए कि ईश्वर ही सबकी रक्षा करता है।

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि। ऋ.8.13.15

अर्थ– हे सर्वशक्तिमान। हे सर्व विघ्नविनाशक देव। यदि तू अतिदूर देश में हो, यदि तू समीपस्थ देश में हो यदि वा समुद्र में या आकाश में हो, कहीं भी तू है उन सब स्थान से आकर हमारे अन्न का रक्षक होता ही है।

सत्रा त्वं पुरूष्टुतँ एको वृत्राणि तोशसे।
नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति। ऋ.8.15.11

अर्थ– हे सर्वस्तुत। हे सर्वपूज्य। हे स्तवनीयतम देव तू एक ही सर्वोपकरण सर्वसाधन सहित (वृत्राणि)

संसारोत्थित सर्व विघ्नों को विनष्ट करता है। हे मनुष्यो! उस परमेश्वर को छोड़कर अन्य कोई दूसरा देव इतना अधिक कार्य नहीं कर सकता है। क्योंकि वह तो सर्वसाधन सम्पन्न होने से सब कुछ कर सकता हे इसलिए उसका नाम बारंबार पुकारा जाता है।

इस मंडल में इस प्रकार के स्तुति मंत्र सैकड़ों की संख्या में हैं पर हम अब केवल एक मंत्र और देकर विषय को विराम देते हैं।

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द सोमिनः।
सुतावन्तो हवामहे। ऋ.8.17.3

अर्थ– हे परमैश्वर्य सम्पन्न परमात्मन्। शुद्ध, पवित्र, अहिंसक, स्तुति परायण स्तुतिकर्ता समग्र सामग्री सम्पन्न सोमरस युक्त और सर्वदा शुभ कर्मकारी हम उपासक गण योग द्वारा तुझको बुलाते हैं। हे भगवन्। जिस कारण हम शुभ पवित्र शुभ कर्मकारी हैं अतः हमारे मन में आप निवास करें जिससे दुर्व्यसनादि दोष हमको न पकड़ सकें। इति।

73 शास्त्री नगर, दादाबाड़ी
कोटा। (राजस्थान)
पिन नं. 3[illegible]09

वैदिक अभिवादन नमस्ते

● डा. धर्मवीर सेठी

बालक/बालिकाओं, छात्र/छात्राओं को न्यूनतम संस्कारों से अवगत कराने के लिए संस्कृत भाषा के अधोलिखित श्लोक का प्रायः पाठ कराया जाता हैः

अभिवादनशीलस्य, नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः, विद्या, यशो, बलम्॥

अर्थात जो आगत (घर आने वाले) का सत्कार करता है, प्रतिदिन जो व्यक्ति बूढ़ों और बुजुर्गों की सेवा करता है (क्योंकि इस आयु तक पहुँचने वाला व्यक्ति अपने आपको एकाकी न समझे, इसलिए किसी न किसी के साथ अपना कुछ समय अवश्य बात–चीत कर व्यतीत करना चाहता है) उसके जीवन में चार चीजें बढती हैं। पहली आयु अर्थात् बुजुर्गों के हाथ जब आशीर्वाद देने के लिए उठते हैं तो वे यही प्रार्थना और कामना करते हैं कि उस व्यक्ति की उमर लम्बी हो (और सच्ची प्रार्थना से होता भी है, ऐसा देखा गया है); दूसरी विद्या ग्रहण में (उन्नति) प्राप्ति, तीसरी जब ईमानदारी और पूरी निष्ठा से वह बालक विद्या ग्रहण करेगा तो उसका नाम अवश्यमेव प्रख्यात होगा, उसका यश फैलेगा और चौथी उपलब्धि होगी उसके मनोबल और शारीरिक बल में वृद्धि। वस्तुतः बड़ों–बूढ़ों के आशीर्वाद में बड़ी ताकत होती है। 'आयुष्मान् भव' भारतीय संस्कृति का यह वाक्यांश कितना महत्त्वपूर्ण है।

उपरोक्त अभिवादन/सत्कार में पैरों को छूने (चरण स्पर्श) की भी पुरानी प्रथा है। और यह चरण–स्पर्श दोनों हाथों को क्रास कर अर्थात् दोनों हाथों से अभ्यागत का (दायें हाथ से दायाँ पैर और बाएँ हाथ से बायाँ) पैर छूना। स्वभावतः सत्कार प्राप्त करने वाला आपके सिर पर हाथ रखकर ढेरों आशीर्वाद देगा।

एक अन्य प्रथा साष्टांग–दण्डवत् प्रणाम की भी है। स्वामी रामदेव अपने गुरु जी को इसी प्रकार प्रणाम करते दिखाई दिए।

एक और प्रक्रिया है, घर आए मेहमान अथवा आप किसी को पहली बार मिल रहे हो उसे, 'नमस्ते' कहने की। इस शब्द का सन्धि–विच्छेद करें तो बनता है 'नमः+ते'। व्याकरण के नियमानुसार विसर्ग (:) को स् हो जाता है। नमः से अभिप्रेत है सम्मान (इज़्ज़त, आदर) और 'ते' का अर्थ है 'आपके प्रति'। अतः नमस्ते का अर्थ हुआ मैं आपका स्वागत/सम्मान/आदर करता हूँ। 'नमस्ते' सदा दोनों हाथ जोड़कर और दिल के साथ लगाकर की जाती है। दोनों हाथों की अंगुलियाँ और हथेली जब जुड़ जाती है तो शक्ति का प्रतीक भी बन जाती है। 'संघे शक्तिः कलियुगे' संगठन में ही शक्ति होती है। अस्तु! 'नमस्ते' सबके लिए सार्वभौम और सार्वकालिक अभिवादन बन जाता है।

वस्तुतः भारतीय (वैदिक) संस्कृति में अभिवादन के लिए 'नमस्ते' परम्परा से ही सर्वमान्य रहा है। परन्तु इस सम्बन्ध में कई भ्रान्तियाँ फैला दी गईं कि यह अभिवादन किसी वर्ग विशेष का है। जबकि यह प्राचीनतम है, ईश्वरीय देन है और मानवमात्र के लिए है। यह शब्द छोटे–बड़े सब के लिए प्रयोग में लाया जाता है। ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया हैः

नमो महद्भ्यो, नमो अर्भकेभ्यो, नमो
युवाभ्यो, नम आसीनेभ्यः

ज़रा 'नमस्ते' के अन्तर्भाव को समझने का प्रयास कीजिए। हाथ जोड़कर आप अपने सामने वाले व्यक्ति को यह अनुभव करा रहे हैं कि मैं केवल आपके लिए, आपके प्रति पूरी निष्ठा से समर्पित हूँ। इस शब्द के द्वारा दिल से दिल को छूने का भाव परिलक्षित होता है। श्रीमद्भगवद् गीता में कहा गया हैः

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥ –०गीता 11/39

अर्थात् हे भगवान! वायु, यम, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजापति (ब्रह्मा) और ब्रह्मा के पिता भी आप ही हैं। आपको हज़ारों बार नमन है! नमन है!! आपके लिए तदपि बारंबार नमन है।

इतना ही नहीं, प्रतिदिन प्रातः काल में आयोजित व्यायाम के कार्यक्रम में जब मातृभूमि की वन्दना के श्लोकों का उच्चारण किया जाता है तो उसका आरम्भ भी 'नमस्ते' शब्द से ही होता हैः

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे
त्वया हिन्दुभूमे सुखं वर्धितोऽहम्।
महामंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे
पतत्वेष कायो नमस्ते नमस्ते॥

प्राणी को तो छोड़िए, मातृभूमि को भी 'नमस्ते' ही कहने की परिपाटी थी।

कभी–कभी 'नमस्ते' की जगह 'नमस्कार' (नमः+कार) शब्द का प्रयोग किया जाता है जो असंगत है क्योंकि मैं किसको नमस्कार कर रहा हूँ, उनका नाम भी बोलना पड़ेगा जैसे 'ओ३म् नमः शिवाय' इत्यादि।

'नमस्ते' वास्तव में अपने आप में पूर्ण अर्थ प्रकट करने वाला छोटा वाक्य है क्योंकि इसमें 'ते' से अभिप्राय आपके सम्मुख खड़ा हुआ व्यक्ति ही तो है। किसी का नाम लेने की आवश्यकता ही नहीं। और इस वाक्यांश से तो 'दिल से दिल को राह' की कहावत सिद्ध होती है। संस्कृत के नाटककारों और महाकवियों ने भी अपनी रचनाओं में 'नमस्ते' शब्द का प्रयोग किया है।

अभिवादन के लिए कुछ अन्य पदों का भी प्रयोग किया जाता है जैसे 'राम–राम', 'जय श्रीकृष्ण', 'जय श्रीराम', 'जय दुर्गे', आदि। 'राम–राम' बलात् धर्मान्तरण करने वाले मदान्ध यवनों का मुकाबला करने के लिए हिन्दुओं ने द्विरुक्ति के रूप में अभिवादन–प्रत्यभिवादन के रूप में प्रयोग किया। जय श्रीकृष्ण, जय श्रीराम, जय दुर्गे तो धार्मिक जयघोष के रूप में देखे जाने चाहिए। हमारे सिक्ख भाई जब परस्पर 'सत्श्री अकाल' से अभिवादन करते हैं या हमारे जवान जब 'जय हिन्द' शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वे युद्धकालीन जयघोष जाने जाते थे। उसी तरह जैसे 'अल्लाह–उ–अकबर' मुसलमानों का जयघोष कहा जाता है। हाँ, मुसलमानों में अभिवादन के लिए 'आदाब' अर्थात् सलाम शब्द का भी प्रयोग होता है। जिसमें उस शख्स की सलामती का भाव छिपा रहता है। मनु ने उस 'सलामती' के भाव को यूँ प्रकट किया है–

ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्, क्षत्रबन्धुमनामयम्।
वैश्यं क्षेमं समागत्य शूद्रं आरोग्यमेव च॥

वर्तमान समय में तो अभिवादन के नए–नए रूप सामने आ रहे हैं– हाथ हाथ ऊँचा करके, बाई–बाई, टॉ–टॉ (हाथ ऊपर कर दाएँ से बाएँ हिलाते हुए) इत्यादि। 'हाय' से तो ऐसा लगता है जैसे कोई प्रिय चल बसा हो। अंग्रेजों की संस्कृति से प्रभावित होकर हम 'गुड–मार्निंग' बोल कर उनका अभिवादन करते हैं परन्तु इन शब्दों से परस्पर आत्मीयता का आभास नहीं होता। यह तो समय का द्योतन करने वाले शब्द मात्र हैं। क्या ही अच्छा हो कि इसके स्थान पर 'शुभ प्रातः' और शुभ संध्या' कहा जाए।

चारों वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों में 'नमस्ते' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। कतिपय बानगी प्रस्तुत हैः

यजुर्वेद :नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे

नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे। –36/21

लगभग ऐसा ही भाव अथर्ववेद (11/4/2) में भी व्यक्त है।

शतपथ ब्राह्मण : स होवाच जनको वैदेहो नमस्ते

स होवाच नमस्ते याज्ञवल्काय – 14/6/5

गरुड़ पुराणः नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर

नमस्ते ज्ञान सद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक।।–234/12

उपनिषद् में 'नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायोः' के रूप में 'नमः' या 'नमस्ते' का ही प्रयोग है। 'नमः' 'नमस्ते' का ही अंश है। श्री गुरुग्रन्थ साहिब की अकाल स्तुति में भी 'नमस्तं' अकाले, नमस्तं कृपाले' में 'नमस्तं' शब्द 'नमस्ते' का ही स्थानापन्न है। देवी भागवत के दुर्गा पाठ की एक बानगी देखेंः

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे,
नमस्ते जगद्व्यापिने चित्स्वरूपे।
नमस्ते सदानन्द रूपं नमस्ते,
जगत्तारिणि पाहि दुर्गे नमस्ते॥ (2/6)

विदेशों से भी जब कोई भारत–भ्रमण के लिए आता है तो 'नमस्ते' कह कर अभिवादन करने में वह प्रसन्नता का अनुभव करता है।

न जाने हम भारतीय क्यों अपनी वैदिक और प्राचीन काल से जीवन्त अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं या यूँ कहें उसके प्रति उदासीन होते जा रहे हैं। समय है चेतने का, अपनी सांस्कृतिक मर्यादाओं की सुरक्षा का।

तो आइए! स्वीकार करें कि जो शब्द अभिवादन के समूचे अर्थ के साथ पूर्ण सम्मान, प्रति सम्मान और आशीर्वाद के भाव को अपने में संजोए है वह शब्द है 'नमस्ते'।

'वरेण्यम्', ए–1055,
सुशान्त लोक–1,
गुरुग्राम–122009

☞ पृष्ठ 6 का शेष

अहिंसा द्वारा न्यायपूर्ण...

उन्मुखी अध्यात्मनिष्ठ है इसके आर्यवीर (वीरांगना) दल, आर्य कुमार (कुमारी) दल हैं। सर्वोदय के छात्र युवा संघर्षवाहिनी है। राष्ट्रीय सिख संगत है। राष्ट्रीय सेवक संघ–आर.एस.एस. द्वारा। मसीही कैथेलिकों के वाई–एम.सी.ए./वाई.डब्ल्यू. सी.ए. हैं। आयुर्वेद आदि शास्त्रों के अनुसार 25 से 50 वर्ष वाले युवा हैं। प्रौढ़, वृद्ध को अतीत भूतकाल स्मरण होता रहता है, बाल वर्ग निहारता है अनागत भविष्य की ओर। तो किशोर एवं युवा के लिए है वर्तमान। जो काल चल रहा उसमें सम्यक सही ज्ञान के अनुसार सम्यक अच्छा कार्य ही करें कराएँ, तो समझे कि युवा होना सार्थक है। पंथ निरपेक्ष युवा संगठन भी हैं। राजनैतिक दलों से जुड़े युवा संगठन सबसे ज्यादा जाने जाते हैं। यही निश्चित है कि युवा सबसे ज्यादा और श्रेष्ठ स्तर का तरह–तरह का सृजनशील कार्य कर सकते हैं। राष्ट्र व समूहराष्ट्र (दक्षेस–सार्क) से आगे महाद्वीप एवं विश्व स्तर पर सुप्रभाव डाल सकते हैं। सब युवा संगठनों को समन्वित कर सकते हैं आर्यवीर (वीरांगना) दल। तो 'अहिंसा द्वारा न्यायपूर्ण शांति' को सक्षम करने हेतु युवा नियोजित प्रयास करें।

698 गोलाई
थांवला (जिला नागौर) 305026

जेल डायरी के कुछ बीमार पन्ने

हावड़ा एक्सप्रेस तेरी, मसूरी एक्सप्रेस मेरी

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

आज जब मैं कारागार में पढ़ाने के लिए पहुँचा तो एक अजनबी बालबन्दी को देखकर उस मेरी पर निगाह टिक गई। मैंने उसे कक्षा में खड़ा किया और पूछा :

"तुम्हारा नाम?"

"जी , मुर्तजा हुसैन" (कल्पित नाम)

"यहाँ कब आए?"

"कल।"

"कहाँ के रहने वाले हो?"

"सम्भल के एक गाँव का"

"कितना पढ़े-लिखे हो?"

"कुछ नहीं।"

"जेल में आने का कारण?"

"जी, मार-पिटाई की थी।"

"विस्तार से बताओ" मैंने धीरे से कहा।

इसके बाद उसने जो कुछ सुनाया उसका सकारात्मक रूप इस प्रकार है-

मुर्तजा का जन्म सम्भल शहर के एक साधारण गाँव में हुआ। उसके पिता जी मजदूरी करके बच्चों का पेट पालते थे। बड़ा परिवार था। मुर्तजा पढ़ता-लिखता नहीं था। दिन भर दोस्तों के साथ इधर-उधर भटकता रहता था। धीरे-धीरे उसे नशा करने की आदत पड़ गई। वह प्रायः घर से गायब रहता था। घर पहुँचता तो बड़बड़ाते और लड़खड़ाते हुए। एक दिन जब वह इस हालत में घर पहुँचा तो उसके पिता जी ने दरवाजा नहीं खोला। वह नशे की हालत में पास के रेलवे स्टेशन पर गया और रेलगाड़ी के एक डिब्बे में बैठ गया। अगले दिन सुबह होने पर उसने कुछ होश आने पर अपने को ऋषिकेश में पाया। नशा और ठंड के कारण उसे तीव्र बुखार आ गया और वह पास के किसी वृक्ष के नीच लेट गया। आते-जाते लोग उसे देखते और बगल से निकल जाते थे। पर एक माता को उस पर तरस आ ही गया और उसने लोगों से कहकर उसे हॉस्पिटल में एडमिट करवा दिया। कुछ समय बाद स्वस्थ हो गया। अब समस्या यह थी इस अनाथ बालक को कहाँ भेजा जाए। आखिर उसी माता को तरस आया जिसने उसे हॉस्पिटल में दाखिल कराया था और वह मुर्तजा को अपने घर ले गई।

अब एक मुस्लिम बालक हिन्दू परिवार में पलने लगा। जब माँ ने उसका नाम पूछा तो उसने अपना नाम मुर्तजा बताने के बजाय विनोद बताया। माँ उस बालक को हिन्दू मानकर पालन-पोषण करने लगी। मुर्तजा भी हिन्दुत्व के रंग में, रंग गया। वह भी देवी-देवताओं की उपासना करता, यदा-कदा बच्चों के साथ कीर्तन में सम्मिलित हो जाता। उस माँ के जिसका नाम लक्ष्मी था, दो बेटे थे। पर दोनों बीमार रहते थे। माँ उनको दवाई देती तो वे आँख बचाकर खाने के बजाय दवाइयों के बिस्तर के नीचे दबा देते थे। आखिर वे बच्चे भी बारी-बारी से इस संसार से कूच कर गए। उनके मरने पर मुर्तजा बनाम विनोद ने उनके बिस्तर के नीचे से ढेर सारी दवाईयाँ निकाली। अब विनोद माँ के पास अकेला रह गया। उसे लगा कि कहीं उसके मरने की अब मेरी बारी न हो। वह घर छोड़ने के लिए बेचैन हो गया और एक दिन अपनी माँ को जल्दी लौट आने का वायदा करके ऋषिकेश से हरिद्वार आ गया।

हरिद्वार तो वह आ गया पर अब समस्या यह थी कि यहाँ क्या करे? पेट कैसे भरे? यहाँ आकर उसने विनोद नाम का चोगा उतार दिया और फिर मुर्तजा बनकर अपनी जाति के रंग में रंग गया। वह प्रायः रेलवे स्टेशन पर चक्कर काटता रहता ताकि बोझा ढोने वाले कुली का काम मिल सके। उसे कुली का काम तो नहीं मिला परन्तु अपनी तरह फटेहाल, हम उम्र साथी बिट्टू मिल गया। उसने बिट्टू के सामने अपनी मजबूरी का रोना रोते हुए कुछ काम माँगा। बिट्टू को उस पर तरस आ गया। बिट्टू ने ट्रेन का एक डिब्बा दान में देते हुए कहा "यह ले झाड़ू, रोनी सूरत बना, घिसट-घिसट कर झाड़ू लगा, 'माँई-बाप' कहते हुए, हाथ फैला और जो पैसे मिलें उन्हें मेरे पास ला।'

मुर्तजा ने ऐसी ही किया और सचमुच चमत्कार हो गया। उसे पहले ही फेरे में पचपन रुपये मिल गए। बिट्टू दूसरे डिब्बे में गया था, उसे साढ़े तीन सौ रुपये मिले थे। बिट्टू ने कहा, "अभी तो शुरूआत है आगे और भी मिलेंगे। याद रख मैं तेरा ठेकेदार हूँ। मुझ से धोखा मत करना। कुछ हिस्सा मुझे भी देना।"

मुर्तजा को यह काम रास गया। अब वह भिखारी से व्यवसायी बनने लगा। जब उसे भूख लगती, तब डिब्बे में भोजन करने वाले यात्री के आगे गिड़गिड़ाता, "बाबू, दो दिनों से भूखा हूँ, रूखा-सूखा अपना जूठा ही दे दीजिए।" यात्री उसे कुछ खाने को दे देते और उसका खाना-पीना मुफ्त में हो जाता। अब वह एक ट्रेन से हरिद्वार से नजीबाबाद जाता और दूसरी ट्रेन से नजीबाबाद से हरिद्वार आ जाता। खाना-पीना ट्रेन में, सोना हरिद्वार के प्लेटफार्म पर। उसकी बिखरी जिन्दगी ठीक पटरी पर आ गई।

एक दिन प्रातः काल हरिद्वार रेलवे स्टेशन से हावड़ा एक्सप्रेस छूटने वाली थी। सभी यात्री अपनी-अपनी सीटों पर बैठ चुके थे। यात्रियों को अचानक लड़ने-झगड़ने की ऊँची आवाजें, सुनाई पड़ीं:

"ये गाड़ी मेरी है।" पहली आवाज उभरी।

"तेरी नहीं, मेरी है।" दूसरी आवाज ने प्रतिवाद किया।

"मैं कई वर्षों से इसमें जाता हूँ।" पहली आवाज ने तर्क प्रस्तुत किया।

"तेरे जाने से क्या गाड़ी तेरी हो गई? ।" दूसरी आवाज ने विरोध किया।

"मैं इसके बदले तुझे मसूरी एक्सप्रेस देता हूँ।" पहली आवाज ने समझौते के स्वर में कहा।

"नहीं, मुझे हावड़ा एक्सप्रेस ही चाहिए।"

सभी यात्री खिड़कियों से सिर बाहर निकाल कर देखने लगे और सोचने लगे क्या सरकार ने ट्रेनों का भी निजीकरण कर दिया है? क्या बिरला और अम्बानी गाड़ियों के लिए लड़ रहे हैं? कहीं ये हमें गाड़ी से उतार न दें। फिर उन्होंने भीड़ में गौर किया तो दो फटेहाल आवारा लड़के हाथों में छोटी झाड़ू लेकर लड़ रहे थे। झगड़े का कारण यह था कि हावड़ा एक्सप्रेस किसकी है, इसके डिब्बों में झाड़ू कौन लगाएगा? और दूसरा झाड़ू वाला डिब्बे की तो बात ही क्या, ट्रेन की ओर भी नहीं झाँकेगा। दोनों लड़के ट्रेन पर एकाधिकार करना चाहते थे। मुफ्त में बिरला और अम्बानी बनना चाहते थे।

उन दोनों का लड़ना-झगड़ना जारी रहा। अब वे गाली गलौच से हाथापाई पर उतर आए। जब हाथापाई से भी काम न चला तो पहली आवाज ने दूसरी आवाज के सिर पर डंडा दे मारा। दूसरी आवाज भी कहाँ चूकने वाली थी, उसने भी जेब से चाकू निकाला और पहली आवाज की पीठ पर प्रहार किया, खून बहने लगा। भीड़ ने शोर किया और पुलिस घटनास्थल पर पहुँच गई। पाठकों को याद दिला दें, पहली आवाज का नाम बिट्टू और दूसरी आवाज का नाम मुर्तजा था। पुलिस ने पहली आवाज अर्थात् बिट्टू को छोड़ दिया परन्तु दूसरी आवाज अर्थात् मुर्तजा के जेल भेज दिया। यही थी मुर्तजा को जेल आने की कहानी।

"अच्छा मुर्तजा हमने तेरी कहानी तो सुन ली, पर एक बात बताओ, तुम बिना टिकट ट्रेन में घूमते थे, क्या टी.टी. तुम्हें चैक नहीं करते थे?" मैंने जिज्ञासावश पूछा।

"बाबू जी, हमें अरेस्ट करके क्या उन्हें मिलता। वे हमें जेल ही तो भेजते। उन्हें हमारे खाने-पीने का प्रबंध भी करना पड़ता। वे बेचारे हमें कुछ नहीं कहते थे।" मुर्तजा ने रौब से कहा।

"क्या तुम जेल से छूटकर फिर वही काम करोगे?"

"बाबू जी, हर काम की एक उम्र होती है। अब ट्रेन में झाड़ू लगाने की उम्र गई अब मैं दिल्ली जाकर अपने सगे-संबंधियों के साथ सड़क की पटरियों पर कपड़े बेचा करूँगा।"

"अच्छा, मेरा आखिरी प्रश्न, तुम हो तो मुसलमान और रहे हिन्दू परिवार में, क्या कभी तुम्हें कठिनाई हुई।

"नहीं बाबू जी, ऊपरवाला तो एक ही है। मैं उसे हिन्दुओं के यहाँ परमेश्वर के नाम से पुकारता रहा और अब अल्लाह के नाम से।"

निस्संदेह उस झाड़ू वाले ने आखिरी प्रश्न के उत्तर ने मेरे मन को जीत लिया।

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम,
ज्वालापुर (हरिद्वार)

दक्षिण भारत में आर्य समाज के बढ़ते कदम

आर्य समाज मारतहल्लि, बेंगलोर ने दक्षिण भारत के केरल प्रान्त में एक नवीन आर्य समाज की स्थापना कर एक और कीर्तिमान स्थापित किया। जनपद पालक्काड में "आर्य समाज बेल्लीनैज़ी, की स्थापना भी ओणम् के शुभ अवसर पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की संचालन समिति के संयोजक स्वामी आर्य वेश जी द्वारा की गई। यज्ञ एवं ध्वजारोहण के उपरान्त वरिष्ठ प्रवक्ता पं. उमेश चन्द कुलश्रेष्ठ जी ने आर्य समाज के उद्देश्यों एवं वर्तमान में आर्यसमाज की उपयोगिता पर विस्तार पूर्वक चर्चा प्रस्तुत कर सबको मुग्ध कर दिया। स्वामी आर्य वेष जी ने वर्तमान में आर्य समाजों द्वारा किए जाने वाले सेवा कार्यों पर विस्तार से चर्चा प्रस्तुत करते हुए नवीन आर्य समाज को प्रेरणा एवं मार्गदर्शन दिया। स्वामीजी ने इस नवीन आर्य समाज की स्थापना में श्री एस. पी. कुमार एवं श्री के.एम राजन की भूमिका की सराहना की और इनका उत्साहवर्धन करने हेतु आये सभी आर्य जनों की उनके अमूल्य योगदान हेतु भूरि-भूरि प्रशंसा की। नवीन आर्य समाज के प्रधान श्री वी. गोविन्दा दास ने सभी अतिथियों एवं उपस्थित आर्यजनों को धन्यवाद दिया। वैदिक प्रार्थना एवं राष्ट्रीय गीत के साथ शान्ति पाठ कर कार्यक्रम का समापन किया गया।

www.thearyasamaj.org

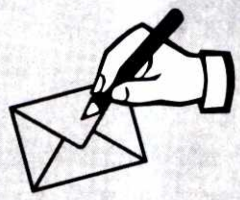

पत्र/कविता

"आधुनिक वर्ण व्यवस्था"

साप्ताहिक 'आर्य जगत' के अंक 60 में श्री माम चन्द रिवाड़िया का लेख ''वर्ण व्यवस्था तथा जाप–पात का प्रभाव'' पढ़ा। उनके लेख से मैं प्रभावित हुआ। आज की वर्ण व्यवस्था कहाँ पनपती है? खाद–पानी और हवा कहाँ से प्राप्त होते हैं? सभी जानते हैं। निर्दोष जनता इसकी शिकार है। बुद्धिजीवी वर्ग इसका संचालक है। धार्मिक मंच, विद्व मंडली और कुछ पूंजीपति भी चला रहे हैं। जो लाभ मिलता है स्वयं गटक जाते हैं। नीचे कुचले लोगों को उसकी भनक भी नहीं पड़ती है। जरा सोचना पड़ता है कि जन्मना जाति प्रथा की कर्मभूमि कहाँ? क्योंकि एक सड़क पर सभी वर्गों के साथ यात्रा करते हैं। एक सवारी में यात्रा करते हैं। एक शोपिंग मॉल से राशन लेते हैं। एक नल का पानी पीते हैं। बिजली के तार, दूरभाष के तार एक ही से सभी के 'कौने क्शिन' हैं। अस्पताल के पलंग पर एक हब्शी था वही पर एक अन्य जाति का भाई भी सो रहा है। डाक्टर सभी सम्प्रदायों के साथ उसको भी देखता है। ईश्वर ने कोई अलग ज़मीन का टुकड़ा उनको नहीं दिया है। मरने पर एक शमशान भूमि में आराम फरमाते हैं। अन्त्येष्टि क्रिया एक ही श्मशान भूमि में होती है। दफ्तर, कारखाने या खेत–खलिहान में साथ–साथ काम करते हैं। पेड़ के तले भोजन भी साथ ही लेते हैं। तो उनके बच्चे एक ही स्कूल में शिक्षा ग्रहण करते है। वो जाति (जन्मना जाति) का क्या महत्व रह गया? कितने भोले बने हुये हैं। या होशियार वे ही जानें।

चार दिनों की जिन्दगी में कितना शेष है। जो भी है इसी अपने पराये के संघर्ष में खपने वाला है। आज कल और परसों की योजना बनाते–बनाते बुलावा आ जायेगा। रामनाम सत् ही जाएगा। प्राण पखेरू किस रास्ते से निकलें पता नहीं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के रास्ते यह भगवान ही जाने।

सोनालाल नेमधारी
कारोलिन, बेल–एर
मोरिशस

****

ईशावास्यमिदं सर्वम्

अपनी लगनेवाली हर वस्तु तुम्हारी,
औ' पास रहनेवाली भी वस्तु तुम्हारी!

सुखभोग सामग्री जिसको उर से लगाए,
वह प्राण बनने वाली हर वस्तु तुम्हारी!

गर्व, अहं भाव से अधिकार जमाए,
वह मन में बसने वाली हर वस्तु तुम्हारी!

त्यागमय उपभोग हेतु सब दिया हमें,
रग–रग में रमनेवाली हर वस्तु तुम्हारी।

स्वत्व–पट से ढककर रखा उसे सुरक्षित,
चितवन में गड़नेवाली हर वस्तु तुम्हारी!

धन–धाम, सौख्य–सुविधा आनंदप्रदात्री,
जीवन को रँगनेवाली हर वस्तु तुम्हारी!

मन झूम–झूम उठता भौतिक पदार्थों पर,
सुख–बिन्दु झरनेवाली हर वस्तु तुम्हारी!

वन–बाग, रम्य उपवन, पशु–पक्षीगण मनोहर,
धरती पर सजनेवाली हर वस्तु तुम्हारी!

सर, शैल, सिंधु, सरिता, नभपिंड जो सभी,
हर वस्तु दिखने वाली हर वस्तु तुम्हारी!

किसको कहूँ मैं अपनी, सब पर तेरी मुहर है,
यह काया चलनेवाली भी नाथ जब तुम्हारी!

ओम् प्रकाश आर्य
आर्य समाज रावत भाटा

श्रद्धावान लभते ज्ञानम्

श्रद्धा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, यह शास्त्र का वचन है। परन्तु यह जानना भी आवश्यक है कि श्रद्धा किसे कहते है? श्रत् शब्द का अर्थ सत्य होता है। इसी से श्रद्धा शब्द बना है, अर्थात् सत्य को धारण करना। आर्य समाज के नियमों में सत्य को कई बार प्रयोग किया गया है। महर्षि दयानन्द जी ने ऐसा तो कई स्थानों पर कहा था कि सत्य के ग्रहण करने तथा असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। अर्थात् सत्य को जानना, मानना और उसी के अनुसार कार्य करना ही श्रेयस्कर है। अब यह कैसे पता चले कि सत्य क्या है? धर्म क्या है? इस बारे में मनुस्मृति में यह श्लोक आया है–

'श्रुति स्मृतिः सदाचारः स्वस्थ्य च प्रियमात्मनः एतच्चतुर्विधमाहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्'

अर्थात् वेद, स्मृति, सत् पुरुषों का आचरण और अपनी आत्मा को जो प्रिय लगे वही धर्म है उसी के अनुकूल आचरण करना चाहिये।

इसलिये वैदिक सिंद्धातानुकूल आचरण करण ही श्रद्धा है अर्थात् प्रातः सायं सन्ध्या करना ,सत्संग में जाना, स्वाध्याय करना, निराकार ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करना, योगाभ्यास अर्थात् श्रद्धापूर्वक इन सब धार्मिक कृत्यो मे भाग लेना सब आर्यो के लिये आवश्यक है। मत मतान्तर के लोग अपने अपने मतों के बड़े पक्के हैं परन्तु उन में अंन्ध विश्वास बहुत है वह बिना विचारे ही अपने–अपने गुरुओं के कहने अनुसार कार्य करते रहते हैं इसे अन्धश्रद्धा भी कहते हैं। इस से कई प्रकार की हानियां भी हो जाती हैं इसलिये सब मनुष्यों को बुद्धि पूर्वक सोच विचार कर कार्य करने चाहियें।

''सत्यमेव जयते नानृतम्'' – सत्य की विजय होती है झूठ की नही। यह हमेशा याद रखना चाहिये। झूठ बहुत दिन तक नहीं चलता। आर्य समाज के लोग हमेश सत्य बात ही कहते थे। कई न्यायालयों ने भी यह माना था। गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के संस्थापक महात्मा मुन्शीराम् जी ने संयासी बन कर अपना नाम श्रद्धानन्द रखा तथा श्रद्धा पूर्वक राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों में आर्य समाज का नेतृत्व किया था और धर्म पर बलिदान हो गये उनके बाद आर्य समाज का कोई नेता पैदा नही हुआ।

अश्विनी कुमार पाठक
वी 4/ 256 सी, केशव पुरम्, दिल्ली

****

हिन्दुओं के पतन का कारण अन्धी श्रद्धा

इन हिन्दुओं को कौन समझायेगा जो अपने 33 तैतीस कोटि के देवताओं को छोड़ कर कबरों पर जाकर सिर पटकते हैं। बृहस्पतिवार के दिन देखो अनेक स्थानों पर जहाँ पास कबरें बनी हुई होती है हिन्दु भाई बहिनों की लाइन लगी हुई होती है। कबरों पर दीया जलाकर कुछ प्रसाद चढ़ा कर अपनी मुराद पूरी करने के लिए पीर फकीर से दुआ करते हैं। यह तो एक मोटा अन्ध विश्वास है, और भी अनेक जालों में फंसे हुये हैं। तान्त्रिक अपना चमत्कार दिखाकर इनकी मान मर्यादा, धन लूट लेता है। ये भोला हिन्दू बाज़ार में तो चतुराई से सौदा खरीदता है परन्तु भेड़ चाल में फंस कर अन्धा हो जाता है। वहाँ बुद्धि का प्रयोग नही करता।

देवराज आर्य मित्र
नई दिल्ली

****

परिवार की खुशहाली में महिलाओं की भागीदारी

● हरिश्चन्द्र आर्य

परिवार एक सार्वभौमिक संस्था है। भारत में परिवार की महत्ता विश्व के अन्य देशों में कहीं अधिक है। भारत में स्त्री को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है तथा स्त्री को पुरुष की अर्द्धांगिनी कहा जाता है। मनु ने स्त्रियों की महत्ता को बताते हुए कहा है कि '' जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का वास होता है। जहाँ स्त्रियाँ तंग की जाती हैं, दुःखी की जाती है, वहाँ परिवार बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं। परिवार में स्त्रियों को उच्च स्थान प्रदान करना भी भारतीय परिवार की विशेषता है।

परिवार विशेष रूप से भारतीय परिवार एक ऐसी संस्था है जिसमें सभी सदस्य पारस्पारिक सहयोग से कार्य करते हैं और यही एक सुखी, समृद्ध और खुशहाल परिवार का आधार है। परिवार की सर्वांगीण समृद्धि और खुशहाली की प्रक्रिया में नारी एक केन्द्रीय शक्ति की भूमिका निभाती है। खुशहाली अर्थात सुख एवं समृद्धि किसी भी परिवार में तभी आ सकती है जब वहाँ नारी स्वस्थ एवं प्रसन्न होगी। सुखी परिवार के लिए शारीरिक मजबूती भी आवश्यक है। सुखी परिवार की एक जरुरी शर्त है–स्वस्थ परिवार। इसकी जिम्मेदारी घर को चलाने वाली महिला पर आ ही जाती है। बच्चों का उचित लालन–पालन, बड़ों की देखभाल आदि, सभी जिम्मेदारियाँ परिवार की महिला को ही वहन करनी होती हैं।

स्वस्थ रहना जिन्दगी की पहली शर्त है

परिवार में पारिवारिक सामंजस्य का केन्द्र भी महिला है। भारतीय परिवार में पत्नी या माता का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। परिवार में गृहिणी को पत्नी, माता तथा गृहस्वामिनी के रूप में अलग–अलग भूमिका निभानी पड़ती है तथा समायोजन स्थापित करना पड़ता है। गृहस्थ जीवन में आने वाले उत्कर्ष और अपकर्ष में नारी की भूमिका का कोई विकल्प नहीं है। पत्नी के उपरान्त महिला माता भी बनती है तथा उसे परिवार में माता के रूप में भी भूमिका निभानी पड़ती है। नारी के बिना अधूरा है परिवार। माँ के कर्तव्य बच्चे के पैदा होने से पहले ही शुरु हो जाते हैं। माँ जो भी सोचती है महसूस करती है, जैसा दिन–प्रतिदिन व्यवहार करती है, सभी बच्चे के शारीरिक व मानसिक विकास को प्रभावित करता है। बच्चे के जन्म के पश्चात माँ के कर्तव्य और भी अधिक बढ़ जाते हैं। एक आदर्श माँ ही बच्चे के लालन–पालन का सही तरीका जानती है। बच्चे के बोलने से पहले ही माँ को उसकी जरुरतों का एहसास हो जाता है। जैसे –जैसे बच्चा बड़ा होता है उसकी शिक्षा भी माँ की गोद से ही शुरू हो जाती है। माँ ही बच्चे की प्राथमिक शिक्षिका है। इस अवस्था में जो भी बच्चा सीखता है वही उसके जीवन का हिस्सा बन जाता है। माँ एक समझौता करने वाली आत्मा है। वह अक्सर पति का ध्यान भी बच्चों की तरफ आकर्षित करती है। कभी–कभी पिता के क्रोधित होने पर माँ उस क्रोध को शांत करती है ताकि उसके परिवार का वातावरण शांत रहे और परिवार खुशहाल रहे। माँ एक पालक–पोषक, मार्गदर्शक और मित्र है। माँ निःस्वार्थ भाव से अपना कर्तव्य निभाती चली जाती है। उसकी केवल एक इच्छा होती है कि उसका पूरा परिवार दिनों–दिन तरक्की करे खुशहाल रहे।

एक जमाना था जब महिलाओं की स्थिति केवल रसोई तक सीमित थी, आज महिलाओं ने परिवार की बागडोर अपने हाथ में लेली है जिससे एक सुखद परिवर्तन आया है। यह मान्यता काफी पुरानी है कि परिवार को चलाने की जिम्मेदारी केवल पुरुष की है। पिछले बीस सालों में हमारे समाज में कई तब्दीलियाँ आई हैं। कई सामाजिक बेड़ियाँ कमजोर हुई हैं, कई टूटी हैं। इसका नतीजा काफी सकारात्मक रहा। शिक्षा का जमकर प्रसार हुआ। हमारे समाज में पारिवारिक रिश्तों में बड़ा भारी बदलाव आया है। आज से दो दशक पहले तक यह माना जाता था कि बच्चों को कड़े अनुशासन में रखना चाहिए तभी वे जिंदगी में आगे बढ़ सकते हैं। बच्चों को अनुशासित रखने की जिम्मेदारी पिता की होती थी। पिता के घर में आते ही कर्फ्यू का सा माहौल हो जाता था। माँ डरी सी, सहमी सी रसोई में लगी रहती। लेकिन अब माँ रसोई तक ही सिमटी नहीं रह गई है। वह अब बच्चों के शारीरिक, मानसिक विकास की ओर सजग हो गई है। शिक्षित और जागरूक होने के कारण माँएँ बच्चों की भावनात्मक जरूरतें बेहतर तरीके से समझ पाती हैं। जैसे बच्चों को हर विषय पर सलाह देना, बात करना, उम्र के अनुसार उनकी हर छोटी बड़ी समस्या का हल निकालना। महिला के जागरूक होने से परिवार की खुशहाली पर प्रत्यक्ष प्रभाव तो पड़ता ही है। परिवार की स्त्री के एक गृहस्वामिनी के रूप में मुख्य कर्तव्य हैं। अपने व्यवहार से सभी संबंधियों को सन्तुष्ट रखना, ससुराल के संबंधियों के प्रति सम्मान एवं स्नेह का व्यवहार करने से परिवार का वातावरण सौहार्दपूर्ण बना रहता है। एक गृहस्वामिनी के रूप में स्त्री घर के विभिन्न कार्यो की व्यवस्था करती है।

परिवार में गृहिणी को बहुपक्षीय भूमिका निभानी पड़ती है। वर्तमान में अनेक नगरीय परिवारों में महिलाएँ गृह दायित्वों के साथ–साथ कुछ व्यवहारिक दायित्व भी निभाने लगी हैं। अनेक महिलाएँ किसी ने किसी व्यवसाय से भी सम्बद्ध होने लगीं हैं। वे या तो नौकरी करती हैं अथवा कोई अपना व्यवसाय करती हैं। इस स्थिति में उन्हें दोहरी भूमिका निभानी पड़ती है। आर्थिक क्षेत्र में भागीदारी बढ़ जाने पर भी स्त्री के पारिवारिक दायित्व कम नहीं होते। अतः वर्तमान में सामंजस्य और संतुलन बनाने में नारी की भागीदारी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। परिवार की एकता, प्रगति एवं समृद्धि में गृहिणी का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गृहिणी का दायित्व है कि वह परिवार के सदस्यों में किसी प्रकार का भेदभाव या पक्षापात न करे। प्रत्येक सदस्य को यथोचित सम्मान एवं स्नेह दे तथा उनकी सुविधाओं व आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रसास करे। इसके अतिरिक्त गृहिणी का दायित्व है कि वह परिवार के प्रत्येक सदस्य की सुविधा एवं कार्यक्षमता तथा रूचि को ध्यान में रखकर गृह कार्य सौंपे। कोई भी समझदार गृहिणी ऐसा दृष्टिकोण अपनाकर परिवार की एकता को बनाए रख सकती है। परिवार की महिला की इस महत्त्वपूर्ण भूमिका को ध्यान में रखते हुए ही महिला को परिवार की धुरी कहा जाता है।

परिवार का सम्पूर्ण अस्तित्व नारी की मजबूत इच्छा शक्ति पर आधारित है। बिना नारी के गृह की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कहा जाता है कि–ईटों से मकान बनता है और परिवार के सदस्यों से घर बसता है, और नारी इस घर की नीव है। जिस पर संस्कारों और सदाचरण से युक्त सदस्यों के स्तंभ और खुशहाल परिवार की मजबूत इमारत खड़ी रहती है।

नारी और पुरूष दोनों गृहस्थी की गाड़ी के दो पहिए हैं। प्राकृतिक रूप से नारी को संस्कार भावना और संवेदना की शक्ति अधिक मिलती है। सहिष्णुता और सामंजस्य की क्षमता अधिक प्रदान की गई है। यही कारण है कि पारिवारिक समृद्धि और खुशहाली में नारी की भागीदारी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अधिष्ठता, उपदेश विभाग, प्रचार कार्यालय
मौ0 काली पगड़ी, अमरोहा
05925–263422

जगन्नाथ जैन डी.ए.वी. गिदड़बाहा में हुआ ज्योति पर्व का आयोजन

आर्य समाज गिदड़बाह के तत्वावधान में स्कूल की आर्य बाल सभा द्वारा ज्योति पर्व का आयोजन बड़ी धूम–धाम से किया गया। विभिन्न कार्यक्रमों में भाषण, संवाद, नाटिका, कविता, भजन आदि के माध्यम से दीपावली के महत्त्व का वर्णन किया गया।

जगन्नाथ जैन डी.ए.वी. सी. सै. पब्लिक स्कूल गिदड़बाहा के आर्य बाल समाज के विद्यार्थियों ने लघुनाटिका के माध्यम से पाखण्ड, अन्धविश्वास का खण्डन किया। कार्यक्रम के अन्त में आर्य समाज के प्रधान जी श्री हरविलास गुप्ता जी ने दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ देते हुए कहा कि स्वामी दयानंद जी का जीवन वेदानुकूल था। हमें भी वेदानुकूल जीवन–यापन करना चाहिए।

कार्यक्रम के अन्त में आर्य समाज के मंत्री श्री मदन लाल जी ने सभी आए हुए विद्यार्थियों एवम् अध्यापकों का धन्यवाद किया।

www.thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 27-28 /11/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर0 एन0 आई0 39/57

डी.ए.वी. पश्चिमी पटेल नगर में विशेष यज्ञ का आयोजन हुआ

उआनंद स्वामी जी के जन्म दिवस को डी.ए.वी. स्कूल पश्चिमी पटेल नगर में विशेष हवन का आयोजन किया गया। पाठशाला के बच्चों तथा अध्यापिकाओं ने हवन में भाग लिया।

पाठशाला की मुख्य अध्यापिका रश्मि गुप्ता जी हवन की यजमान थीं। विद्वान शास्त्री जी ने हवन करने के बाद बच्चों को आनंद स्वामी जी के जीवन बचपन

की घटना से अवगत करवाया तथा मंत्र के जप का महत्त्व बताया।

आनंद स्वामी जी की बुद्धि इसी मंत्र के जप से निखरने लगी थी। गायत्री मंत्र का जप उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिन तक किया था। अपने ज्ञान, मनोबल तथा तपोबल के कारण वह महान लेखक बने। स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने गांधी जी के साथ कंधा से कधा मिलाकर काम किया।

आर्य युवा समाज डी.ए.वी. पुष्पांजलि 'दिल्ली' ने निकाली रैली

डी.ए.वी. स्कूल पुष्पांजलि दिल्ली के प्रागंण में दीपावली के पावन पर्व के उपलक्ष्य में आयोजित यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञोपरान्त प्रधानाचार्या श्रीमती रश्मिराज विस्वाल जी ने दीपावली पर्व के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ''दीपावली पर्व हमारी सनातन, वैदिक परम्परा का ऐसा पर्व है, जो हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर प्रेरित करने की प्रेरणा देता है यह हमारी वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को व्यक्त करता है। प्रधानाचार्या श्रीमती विस्वाल जी ने इस के दिन से महर्षि दयानन्द जी के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए कहा कि उस महामानव, युगपुरुष ने अपने योगबल और तपबल रूपी ज्ञान के प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया है। उनका शरीरान्त भी दीपावली के दिन ही हुआ था। हम सबको उनके दिखाए हुए मार्ग पर चलकर अपने जीवन का उत्थान करना है और समाज को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करना है।

श्रीमति बिस्वाल जी ने कहा दीपावली मात्र पटाखों का पर्व समझ लिया गया है जो कि गलत है। हमें यह संकल्प लेना है कि न तो हम स्वयं पटाखे चलाएंगे और दूरों से भी ऐसा करने का आग्रह करेंगे। ऐसा करना ही इस पर्व का सात्विक आयोजन होगा। अन्त में प्रधानाचार्या जी ने ''पटाखे नहीं चलाएँगें'' की रैली को संचालित किया। बच्चों ने स्कूल के आस–पास की कालोनियों में घूम कर पटाखे न चलाने का लोगों से अनुरोध किया है।

आर्य अनाथालय फिरोजपुर छावनी में हुआ पौधा रोपण

आर्य अनाथालय एवं दयानन्द मॉडल हाई स्कूल के प्रांगण में 'वृक्षारोपण सप्ताह' मनाया गया। इस दौरान श्री एम.एम. सचदेवा की प्रेरणा से भारतीय स्टेट बैंक के स्थानीय वरिष्ठ पदाधिकारियों ने निःशुल्क रूप से उपयोगी एवं सुन्दरता वर्द्धक वृक्ष लगाए। आश्रम प्रबंधक डॉ. सतनाम कौर, दयानन्द मॉडल हाईस्कूल की प्रिंसीपल

श्रीमति रितु गोयल, आश्रम के तथा विद्यालय के स्टॉफ और बच्चों ने बढ़ चढ़ कर इस उत्सव में भाग लिया।

इसी सप्ताह के दौरान पं. सतीश कुमार शर्मा एडवोकेट एव आर्य समाज के मंत्री श्री पवन शर्मा ने भी आश्रम में वृक्षारोपण कर सप्ताह का समापन किया। आपने बच्चों का मार्ग दर्शन करते हुए अधिक वृक्ष लगाना वातावरण सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण बताया। डॉ सतनाम कौर ने सभी का आभार प्रकट करते हुए वृक्षारोपण जैसे महत्वपूर्ण एवं सुन्दर कार्य को करते रहने की बच्चों को प्रेरणा दी।

गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय में बी.एम.डी.ए.वी. के छात्रों का डंका बजा

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के विद्यालय विभाग में एक त्रिभाषा भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमें हरिद्वार से सात विद्यालयों के प्रतिभागियों ने भाग लिया। यह प्रतियोगिता कक्षा 6 से 12वीं कक्षा के विद्यार्थियों के बीच आयोजित की गई थी। जिसमें बी.एम.डी.ए.वी. हरिद्वार के दो छात्रों ने भाग लिया। हिन्दी में ऋचा आर्या कक्षा 6 व अग्रेजी में विदिशा ध्यानी कक्षा 8 विद्यालय के दोनों छात्रों ने अपने से बड़े आयु वर्ग व कक्षा वर्ग (11 व 12) के विद्यार्थियों को टक्कर देते हुए हिन्दी भाषा में द्वितीय स्थान व अग्रेजी भाषा में सान्त्वना पुरस्कार प्राप्त किया। हिन्दी भाषा में ऋचा आर्या ने अपने विषय (स्वतंत्रता आंदोलन में आर्य समाज का योगदान) में बोलते हुए आर्य समाज द्वारा किये गये कार्यों पर प्रकाश डाला। छात्र ने अपने धारा प्रवाह वक्तव्य से उपस्थित सभी आगंतुक महानुभावों को स्तब्ध कर दिया।

इस अवसर पर विद्यालय के दूसरे छात्र ने भी अंग्रेजी भाषा के अपने विषय पर बोलते हुए भ्रष्टाचार के अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला। विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री यशबीर सिंह जी ने दोनों बच्चों व अध्यापकों को बहुत सारी बधाईयां दीं और कहा कि ऐसी ही प्रतियोगिताओं में भाग लेकर बच्चे कुशल वक्ता बनते है, और अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं।

मुद्रक व प्रकाशक – श्री प्रबोध महाजन, सभा मंत्री द्वारा मदन गोयल के प्रबंध में अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि., डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय 'आर्य जगत्' आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – श्री पूनम सूरी